संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 41 : अंक : 11/12
फरवरी/मार्च, 2009

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृतकण

यो यथा कुरुते कर्म शुभं वाप्यशुभं तथा।
तथा फलं भवेत्तस्य नान्यथा तु कदाचन।

–देवी पुराण

जो शुभ अथवा अशुभ जैसा भी कर्म करता है, उसका फल भी वैसा ही होता है, इसके विपरीत कभी भी नहीं होता। कोई भी व्यक्ति प्रारब्ध का उल्लंघन करने में कभी समर्थ नहीं होता।

• • •

यत्र धर्ममतिः शान्तिस्तत्र श्रीः कान्तिरेव च।
अधर्मो यत्र सा तत्र विपद्रूपा स्वयं शिवा।।

–देवी पुराण

जहाँ धार्मिक बुद्धि है वहीं शान्ति, समृद्धि और कान्ति का वास है; किंतु जहाँ अधर्म है वहाँ वे शिवा स्वयं विपत्ति के रूप में आ जाती है।

• • •

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चलं जीवित यौवनम्।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः।

–चाणक्य नीति दर्पन

इस चराचर जगत में लक्ष्मी (धन सम्पदा), प्राण, यौवन और जीवन (आयु)–सब चलायमान और नश्वर हैं, केवल एक धर्म ही निश्चल और शाश्वत् है। जो सदा साथ रहता है और मृत्यु के बाद भी साथ जाता है। अतः सुख प्राप्ति के लिए हमें धर्म का आचरण ही करना चाहिए। पापाचरण कदापि नहीं।

• • •

अवशेन्द्रिय चित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगाभरण प्रायो ज्ञानं भारः क्रियां बिना।।

–हितोपदेश

जिनके वश में चित्त और इन्द्रियाँ नहीं है, उनकी क्रिया (कर्म) हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है। बिना आचरण किए ज्ञान बोध के समान है जैसे कुरुप स्त्री के पास आभूषण।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 41 अंक : 11/12

यामाराध्य विरिञ्चिरस्य जगतः स्रष्टा हरिः पालकः।
संहर्ता गिरिशः स्वयं समभवद्धयेया च या योगिभिः।
यामाद्यां प्रकृतिं वदन्ति मुनयस्तत्त्वार्थविज्ञा परां
तां देवीं प्रणमामि विश्वजननीं स्वर्गापवर्गप्रदाम्।।

जिनकी आराधना करके स्वयं ब्रह्माजी इस जगत के सृजनकर्त्ता हुए, भगवान् विष्णु पालनकर्त्ता हुए तथा भगवान् शिव संहार करने वाले हुए, योगिजन जिनका ध्यान करते हैं और तत्त्वार्थ जानने वाले मुनिगण जिन्हें मूल प्रकृति कहते हैं–स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले उन जगज्जननी भगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

फरवरी/मार्च 2009

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 13
3. बृज किशोर का कष्ट निवारण –केशव देव उपाध्याय 15
4. प्रभुजी तुम्हें बार-बार बलिहारी –जगदीश राय बंसल 21
5. अष्टांग योग-2 –डॉ. ऋषिराम शर्मा 22
6. अन्तमति सोगति –डा. जे.पी. शर्मा 26
7. सुमन चाहिए –भूपेन्द्र 'अंकुश' 30
8. गीता ज्ञान –मोहन स्वरूप 31
9. आत्मसंयम योग –कृष्ण कुमार पाण्डेय 32
10. बड़े गुरु भाईयों का जाना –अवनीश कुमार भटनागर 36
11. सफल शिल्पी! मेरा प्रणाम, 'तुझे' –राजेश कुमार सिंह 38
12. संकल्प एवस्तु नवीन वर्ष –डी.पी. शर्मा 40

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 130.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

संयम एवं गुरुदेव

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने पिछले प्रकरणों में स्थान–स्थान पर यह संकेत किया है कि हमारी योग विद्या सर्वफलो की दात्री है और उसकी प्राप्ति के दो महत्वपूर्ण साधन हैं।

1 मनुष्य का अपना अभ्यास और वैराग्य। इसके अतिरिक्त एक और महान साधन है जिसको हमने ''गुरुदेव क्या'' शीर्षक के अन्तर्गत वर्णित किया है। प्रत्येक साधना की पूर्णता 'साधन–योग' एवं 'सिद्ध–योग' दोनों ही प्रकार से प्राप्त की जा सकती है, किन्तु साधक का अभ्यासी होना, अनवरत अपने साधनों का श्रद्धापूर्वक पालन करते रहना बहुत ही आवश्यक है। यही बात संयम के विषय में भी है, जहाँ पर :–

''त्रयमेकत्र संयमः''

सूत्र की व्याख्या की थी और यह बतलाया गया था कि संयम के परिणाम में समाधि प्रज्ञा का आलोक होता है, अर्थात् समाधि प्रज्ञा पूर्णरूपेण निर्मल हो जाया करती है। इस प्रकार की स्थिति आ जाने पर संयम की साधना करने वाले योगी को संयम का योग भूमिकाओं में उपयोग करना चाहिए। योग–दर्शन के विभूति–पाद में भगवान पतंजलि देव ने स्वयं आज्ञा दी है कि:–

तस्य भूमिषु विनियोगः।

अर्थात्–संयम के बल से समाधि प्रज्ञा के निर्मल हो जाने पर उस संयम का भिन्न–भिन्न भूमियों में विनियोग करना चाहिये, जिससे कि संयम की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाय और परिणाम योगी के सामने आते रहें। इस सूत्र का भाष्य करते हुए भगवान व्यासदेव लिखते हैं:–

तस्यः संयमस्य जितभूमेर्याऽनन्तरा भूमिस्तत्र,
विनियोगः न ह्यजिताधर भूमिरनन्तर भूमिं विलङ्घ्य,
प्रान्त भूमिषु संयम लभते तद्भावाच्च कुतस्तस्य,
प्रज्ञाऽऽलोकः, ईश्वर प्रसादज्जितोत्तर भूमिकस्य च,
नाधर भूमिषु पर चित्तज्ञानादिषु संयमो युक्तः,
कस्मात्? तदर्थस्यान्यत् एवावगतत्वाद भूमेरस्या,

इयमनन्तरा भूमिरित्यत्र योग एवोपाध्यायः।

अर्थात्–संयम के बल से जिस भूमि को जीत लिया हो उससे आगे की भूमिका में ही संयम उपयुक्त है, जिस प्रकार प्रथम श्रेणी के विद्यार्थी को द्वितीय श्रेणी का ही कोर्स पढ़ना चाहिये। इसी प्रकार अपने एक लक्ष्य को पूर्ण किये बिना आगे बढ़ने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। क्योंकि जिस प्रकार मन्द गति वाला विद्यार्थी बीच की श्रेणियों को छोड़कर प्राइवेट तौर पर परीक्षा की तैयारी करके ऊँची कक्षाओं को उत्तीर्ण करने का प्रयत्न करता है, और उनमें वह बार–बार असफल हुआ करता है। इसी प्रकार निम्न श्रेणियों की भूमिकाओं में यदि योगी ने स्थिति प्राप्त नहीं की तो उत्तर भूमिकाओं में संयम करना उपयुक्त नहीं है। यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो उसका संयम स्थिर पद को प्राप्त नहीं कर सकेगा। वह बीच की भूमिकाओं को छोड़कर उत्तर भूमिकाओं में संयम करता रहेगा और अधः भूमियाँ भी दुर्बल रह जायेंगी। परिणाम में "**बालश्चन्द्रमसं यथा**" की कहावत चरितार्थ हो जायेगी। जिस प्रकार बच्चा चन्द्रमा की ओर हाथ फैला कर चन्द्रमा को नहीं पकड़ सकता, इसी प्रकार जिस योगी ने अधः भूमियों में संयम को प्राप्त नहीं किया वह उत्तर भूमियों में भी स्थिति लाभ नहीं कर सकता। अतः साधक को क्रमशः अपने अभ्युत्थान का प्रयत्न करना चाहिये जैसा कि भगवान पतंजलि देव जी ने पीछे निर्देश किया है:–

स तु दीर्घ काल नैरन्तर्य सत्कारासेवितो दृढ़ भूमिः।

अर्थात्–अभ्यास तभी परिपक्व हो जाता है जब लम्बे समय तक लगातार और आदरपूर्वक किया जाये। इसके अतिरिक्त जो जल्दी परिणाम को चाहने वाले हैं वे लोग प्रायः असफल ही बने रहते हैं। एक बात और विशेष उल्लेखनीय है, ऊपर के भाष्य की पंक्तियों में भगवान व्यास देव ने ये स्पष्ट शब्द लिखे हैं:–

ईश्वर प्रसादाज्जितोत्तर भूमिकस्य च नाधर भूमिषु परचित ज्ञानादिषु संयमो युक्तः कस्मात्? तदर्थस्यान्यत् एवावगतत्वाद भूमेरस्या इयमनन्तरा भूमिरित्यत्र योग एवोपाध्यायः।

अर्थात्–जिस योगी ने ईश्वरानुग्रह से उत्तर भूमियों में जय प्राप्त कर ली है उसको अधः भूमियों में संयम करना आवश्यक नहीं; क्योंकि अधः भूमियों में जो सिद्धियाँ प्राप्त होनी थी वह उत्तर भूमियों के जीत लेने पर स्वाभाविक ही योगी को प्राप्त हो जायेंगी, इसलिये अभ्यासी योगी के लिये अब यहाँ संयम करना है। उसके बाद कहाँ संयम करना है, इसका ज्ञान प्राप्त कराने के लिये उसका योग ही गुरु बन जाता है। जैसाकि कहा है:–

योगेन योगो ज्ञातव्यो योगी योगात्प्रवर्तते।
योऽप्रमत्तस्तु योगेन स योगे रमतेचिरम्।।

अर्थात्–योग से योग को जानना चाहिये, योग से ही योग प्रवृत्त होता है। जो प्रमाद छोड़कर योगाभ्यास करता है वह लम्बे समय तक समाधि में लीन हो जाया करता है। इसलिये

इस मार्ग में जिस पुण्य कर्मा साधक को परम गुरु ईश्वर की सहायता प्राप्त है उसका अनायास ही संयम सिद्ध हो जाया करता है। (गुरुदेव का तीन प्रकार का मार्ग दर्शन)

हम ''गुरुदेव क्या'' शीर्षक के अन्तर्गत गुरुदेव के स्वरूप को भली प्रकार खोल कर समझा चुके है। मोटे शब्दों में भगवान व्यास देव ने–

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए गुरु की परिभाषा में ये शब्द लिखे है:–

यत्रावच्छेदार्थेन कालोनोपावर्तते स गुरुः।

अर्थात्–जहाँ पर अवच्छेदनार्थ काल नहीं पहुँचता वही सत्ता गुरुओं की भी गुरु है, इसलिये वह सर्वशक्तिवान गुरुदेव अपने विनीत शिष्यों के उत्थान के लिये अनेक प्रकार से कृपा करते है, जिससे कोई शिष्य दुःख द्वन्द्व में पड़ा न रह सके एवं परम श्रेय मार्गी बन जाये।

गुरुदेव का प्रथम शक्ति प्रक्षेप

गुरु शब्द की व्याख्या करते हुए हमारे पूर्वाचार्यों ने बतलाया है:–

गृणाति शब्दादीनुपदिशति स गुरुः।

अर्थात्–जो आप्त पुरुष शब्दों द्वारा उपदेश से अपने शिष्यों को मार्ग दर्शन करा करके परम श्रेय की ओर ले जाने के लिये प्रयत्नशील है, अधिकारी लोगों के लिये उनका यह प्रथम शिक्षण है। शक्तिवान गुरु की वाणी पतन रहित हुआ करती है। आप्तोपदेश कभी भी व्यर्थ नहीं होता। योग दर्शन में जहाँ पर आगम प्रमाण का वर्णन किया गया है वहाँ पर उसका व्याख्यान इन शब्दों में किया गया है:–

आप्तेन दृष्टोऽनुमितो वाऽर्थः परत्र स्वबोध, संक्रान्तये
शब्देनोपदिश्यते शब्दात्तदर्थ विषया वृत्तिः श्रोतुरागमः
यस्याश्रद्धेयार्थो वक्ता न दृष्टानुमितार्थः स आगमः
प्लवते मूलवक्तारि तु दृष्टानुमितार्थे निर्विप्लवः स्यात्।

अर्थात्–आप्त पुरुष के द्वारा देखा व सुना हुआ अर्थ दूसरे के मन में अपना बोध प्राप्त कराने के लिये शब्दोपदेश के द्वारा दिया जाता है। वह सुनने वाले साधक के लिये आगम प्रमाण है। जिन शब्दों का उपदेश करनेवाला वक्ता आप्त पुरुष नहीं है उसकी वाणी मिथ्या हो सकती है, किन्तु जिन्होंने आप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया है और शुद्ध मन से अपने शिष्यों को ज्ञानोपदेश कर रहे है, यह गुरुदेव की प्रथम शक्ति है, जिसके द्वारा अधिकारी शिष्य शिक्षा पाते ही तत्काल पारदर्शी बन जाते हैं।

गुरुदेव का द्वितीय शक्ति प्रक्षेप

उसके बाद गुरुदेव का दूसरा उपदेश अस्मितानुगत समाधि में स्थिति प्राप्त करने वाले योगी में चित्त निर्माण करने की योग्यता आ जाती है। योग दर्शन हमें बतलाता है –

निर्माणचित्तान्यस्मितामात्राद्।

अर्थात्–अस्मिता मात्र करण को लेकर योगी अपने चित्तों का निर्माण किया करता है। उसके ये सब चित्त एक प्रधान चित्त के अधीन रहा करते हैं और इस प्रकार के अनेक निर्माणित चित्तों के द्वारा योगी अपने शिष्यों के सामने सूक्ष्मत्वेन प्रगट होकर अनेक प्रकार की विद्या का उपदेश दिया करते हैं तथा उनको हिताहित का ज्ञान कराया करते हैं जैसे प्राचीन समय में भगवान कपिल देव ने:–

आदिविद्वान्निर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्याद्भगवान्
परमर्शिरासुरये जिज्ञासमानाय तन्त्रं प्रोवाच।

अर्थात्–आदि विद्वान भगवान कपिल देव ने निर्माण चित्त के द्वारा जिज्ञासु आसुरी को तन्त्र का उपदेश किया। इसी प्रकार से योगी गुरु अपने निर्माण चित्तों के द्वारा अपने जिज्ञासु व विनीत शिष्यों को [illegible]तोपदेश किया करते है और उनके अज्ञानान्धकार को दूर करते हैं। उनके हिताहित का [illegible]र्देश किया करते है।

एक उदाहरण

रोहतक के पास पहरावर नाम का एक गौड़ ब्राह्मणों का गांव है। उस गांव में एक योगीराज धजाराम जी के एक शिष्य निवास करते थे, श्री गुरुदेव के अनुग्रह से उनको अन्तर्स्थिति प्राप्त थी। उनके ध्यानानुभव बहुत ही उत्कृष्ट थे। जब भी वे ध्यान में बैठते तो श्री गुरुदेव के अनुग्रह से इष्टदेव दर्शन प्राप्त होते और साथ ही श्री गुरुदेव का उपदेश भी प्राप्त होता था। अकस्मात् कोई संस्कार उदय हुआ, उनके गुरुदेव ने निर्माण चित्त द्वारा ध्यान में आकर आदेश दिया कि बेटा दो दिन बाद तुम्हें एक जहरीला सर्प काट लेगा और उसके काटने से तुम्हारी मृत्यु उपस्थित हो जायगी, किन्तु तुम विवेक ज्ञान की ओर बढ़ रहे हो और तुम्हारे शरीर [illegible] गुरुदेव का अधिकार है अतः तुम मर नहीं सकोगे। समय पर श्री गुरुदेव तुम्हारी अवश्य रक्षा करेंगे। ध्यान समाधि में श्री गुरुदेव की इस प्रकार की आज्ञा सुन कर वह पवित्रात्मा साधक भयभीत तो नहीं हुआ, क्योंकि उसकी रक्षा का भार स्वयं उसके गुरुदेव ने अपने ऊपर ग्रहण कर लिया था, किन्तु फिर भी उसने अपनी सुरक्षा के लिये राजा परीक्षित की तरह प्रबन्ध कर लिये। वह दो दिन तक अपने घर से बाहर नहीं निकला, किन्तु संस्कार प्रबल था, होनहार प्रबल थी। और साथ ही उस पवित्र साधक को अपने गुरुदेव का अनुग्रह करना ही था। दूसरे दिन सर्प काटने का जो निर्दिष्ट समय था। उसी दिन उसके गांव के अन्य साथी उसे सायकाल के समय भ्रमणार्थ बाहर खेतों में ले गये और एक जगह पर उसे नाली खोदने में लगा दिया। उसके मन से भी यह ख्याल निकल चुका था कि अब तक मुझे सर्प ने नहीं काटा तो आगे और क्या काटेगा? उस बेचारे को यह ज्ञान नहीं था कि होनहार ही तुमसे नाली खुदवा रही है। यह नाली खोदना ही सर्प को प्रेरणा देना और वह तुम्हें काट खायेगा। उस साधक ने लोहे का फावड़ा (कस्सी) उठाया और ज्यों ही नाली में मारा उसके पास में एक

बिल निकला और उस बिल में से अकस्मात् बड़े वेग के साथ एक काला सर्प निकला और उसने उसकी पैर की उँगली में काट लिया। सर्प इतना विषैला था कि काटते ही वह साधक अन्धा हो गया, किन्तु उसके सर्वसामर्थ्यवान् गुरुदेव उस महा अँधेरे में भी उसके सामने आ गये और कहा बेटा यह होनहार ही थी, तुम्हें सर्प ने काट ही लिया। अब तुम जल्दी घर को लौट चलो तुम्हें दिखलाई नहीं देता किन्तु हम तुम्हें दीखते रहेंगे हमारे साथ–साथ तुम चले आओ। यह लो तुम्हें हम एक जड़ी दिखाते हैं इस जड़ी के प्रभाव से चार घण्टे बाद तुम्हारा यह सब विष वमन होकर निकल जायेगा और तुम राजी हो जाओगे। तुम यहाँ से जाने के बाद बोल नहीं सकोगे किन्तु साहस करके अपनी माँ को तुम हमारी बताई बातें कह देना। उसके परम गुरुदेव ने निर्माण चित्त के द्वारा यह उपदेश किया और उसी अवस्था में ही कोई दिव्य औषधि अथवा दिव्य औषधि के रूप में अपनी कृपा का संचार किया। अपनी माता को श्री गुरुदेव के बतलाये हुए दो शब्द कह कर वह साधक बेहोश हो गया। किन्तु परिणाम वही हुआ जो श्री गुरुदेव ने दो दिन पहले ही बतला दिया था। ठीक चार घण्टे के बाद उस बच्चे को वमन हुई जिसके द्वारा उसके मुख से काला–काला जहर निकला और उसकी आँखें खुल गयी। आँखें खुलने के बाद उसने श्री गुरुदेव की परम अनुकम्पा को अपने सब घर वालों को बतलाया। शनैः–शनैः वह बालक बिल्कुल ठीक हो गया। आजकल वह पूर्णरूपेण स्वस्थ है। यह श्री गुरुदेव की चित्त निर्माण के द्वारा दूसरी सहायता है जिसके द्वारा श्री गुरुदेव सूक्ष्म शरीर से अपने शिष्यों के सामने आकर उपदेश दिया करते हैं और अनेक प्रकार से उनका हित साधन किया करते हैं।

श्री गुरुदेव का तृतीय शक्ति प्रक्षेप

तीसरी श्रेणी उन परम पुण्यात्मा साधकों की है, जिनके अन्तःकरण में श्री गुरुदेव जी का पवित्र तेज हर समय बराबर प्रकाशित रहा करता है और उनके मनों में स्वतः ही ज्ञान धारायें विकसित होती रहा करती हैं। ऐसे साधक उन परम गुरु के अनुग्रह को प्राप्त करके जितेन्द्रभूमि हो जाया करते हैं। उन लोगों को निम्न श्रेणियों में संयम करने की आवश्यकता नहीं रहती। उनके गुरुदेव उनको कोई शाब्दिक उपदेश नहीं करते किन्तु गुरुदेव के परम अनुग्रह से उनके अपने हृदय में ही सत्य बोध होने लगता है, ऐसे साधकों को ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त हो जाती है। योग शास्त्र हमें बतलाता है:–

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा।

इस सूत्र के भाष्य में भगवान व्यासदेव लिखते हैं:–

तस्मिन् समाहित चित्तस्य या प्रज्ञा जायते
यस्या ऋतम्भरेति सञ्ज्ञा भवति, अन्वर्था च सा,
सत्यमेव बिभर्ति, न तत्र विपर्यासगन्धोऽप्यस्तीति।

अर्थात्–समाहित चित्त वाले योगी को जो बुद्धि पैदा होती है उसका नाम ऋतम्भरा है

और वह 'यथा नाम तथा गुण' वाली प्रज्ञा है, अर्थात्–

ऋतं सत्यं बिभर्ति सा ऋतम्भरा

जो बुद्धि केवल मात्र सत्य को ही धारण करती है और जहाँ मिथ्यात्व की गन्ध भी नहीं है वह ऋतम्भरा प्रज्ञा कहलाती है। जिस पुण्य कर्मा योगी को यह ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त हो जाती है उसकी शेष सब वृत्तियाँ समाप्त हो जाया करती है। वह जो कुछ भी सोचता है सत्य सोचता है, जो कुछ भी वह करता है सत्य ही करता है। यही एक ऐसी बुद्धि है जिसमें जाकर योगी सिद्धान्तों का सत्य निर्णायक बन जाता है। जब तक मनुष्य को इस प्रकार की स्थिति उपलब्ध न हो तब तक यदि वह अपने आपको सिद्धान्तों का निर्णेता साबित करता है तो उसकी यह भारी भूल है। ऋतम्भरा प्रज्ञा के बिना संसार के लोगों के सामने किसी सिद्धान्त की स्थापना करना उसी प्रकार का है जैसे कोई अन्धा किसी अन्धे को पकड़ कर मार्गदर्शन का साहस करे। यही कारण है कि आजकल अखबारों में बहुत सी भविष्यवाणियाँ निकलती हैं और वे झूठी होती हैं। पिछले दिनों इटली के किसी योगी की यह भविष्यवाणी बहुत अधिक प्रचारित हुई कि 14 अगस्त को संसार में प्रलय आ जायेगी। कितने ही लोगों ने इसी भय से आत्मघात कर लिये, किन्तु अन्ततः परिणाम बिल्कुल विपरीत रहा। इसी प्रकार और भी लोग कई प्रकार की भविष्यवाणियाँ करते रहते हैं, किन्तु ये लोग सांसारिक लोग है और अनुभूति रहित हैं। उनकी वाणियों में कोई तथ्य नहीं निकल पाता। ऋतम्भरा प्राप्त योगी एक प्रकार का सिद्ध–संकल्प होता है। उसको अपने किसी भी कार्य को करने के लिये अपने किसी विशेष बल के प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसका अपना संकल्प ही उसका अपना बल है। इस विषय में मुझे एक उदाहरण का स्मरण आ रहा है जो ऋतम्भरा प्रज्ञा के इस विषय को पूर्णरूपेण स्पष्ट करता है।

उदाहरण

हमने अपने अभ्यासी साधकों में देखा है कि वे लोग अपने भूत–भविष्य की बातें करते रहते है जब उनसे पूछा गया कि क्या तुम लोग ध्यान दृष्टि से समाधि में अनुभव कर ये सब बातें कहते हो तो उनका जवाब एक ही होता था कि नहीं। हमारे मन के भाव ही इस प्रकार के बन जाते है। वे लोग जिस किसी के विषय में कोई भूत भविष्य की बात करते हैं निष्कर्ष में वह सत्य ही निकलती है। यह उनके प्रज्ञा लोक का फल है, जिसमें ऋत को धारण करने वाली बुद्धि स्वतः ही उपस्थित रहा करती है। मनुष्य यदि सत्य बोलने की चेष्टा करे और मनसा, वाचा, कर्मणा सत्यवादी बन जाये तो क्रियात्मक सत्यवादन से ही मनुष्य संकल्प सिद्धि को प्राप्त कर लेता है जिसका निर्देश भगवान पतंजलि देव ने सीधे और स्पष्ट शब्दों में योग दर्शन में किया है–

सत्य प्रतिष्ठायां क्रिया फलाश्रयत्वम्।

अर्थात्–सत्य प्रतिष्ठ होने पर योगी की वाणी क्रिया फल वाली हो जाया करती है।

इस सूत्र पर भाष्य करते हुए श्री व्यासदेव ने यह पंक्ति लिखी है:-

धार्मिको भूया इति भवति धार्मिक:

स्वर्ग प्राप्नुहीति स्वर्ग प्राप्नोति

अमोघाऽस्य वाग भवति।

अर्थात्–ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त योगी यदि किसी के विषय में यह विचार करता है कि फलां व्यक्ति धर्मात्मा हो जाय तो वह धर्मात्मा हो ही जाता है। यदि वह किसी को कह दे **स्वर्ग प्राप्नुहि** तो वह स्वर्ग को प्राप्त हो जाता है अर्थात् उसकी वाणी बिल्कुल अमोघ हो जाती है। यह केवल मात्र सत्य बोलने का परिणाम योगी के सामने आया करता है। कदाचित् गुरूदेव के परम अनुग्रह को पाकर साधक संयम बल से प्रज्ञाऽऽलोक को प्राप्त हो जाता है, तो उसकी सत्य–संकल्पता में शंका ही क्या हो सकती है? ऐसा योगी जिसको ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त हो चुकी है और अस्मितानुगत योग को प्राप्त होकर जिसकी अस्मि–अस्मि अहमेव अस्मि ऐसी बुद्धि वृत्ति अस्मितानुगत समाधि में हो गयी है, वह योगी निर्माणोन्मुखी है और उस निर्माणोन्मुखी वृत्ति को ले करके अपनी संकल्प शक्ति से दूसरों के हृदय में ज्ञान का प्रकाश दिया करता है। लोगों की दृष्टि में उसके कार्य अलौकिक होते हैं, उसके अलौकिक क्रिया–कलाप को देखने वाले सभी लोग यह समझते हैं, कि यह इनकी कोई सिद्धि है जिसके बल से इन्होंने ये सब कार्य किये, किन्तु यह उस योगी की समाधि प्रज्ञा का बल होता है। ऐसी स्थिति में योगी उर प्रेरक बन जाता है। यह उत्तम साधक की तीसरी मदद हुआ करती है जो उसकी बुद्धि में ही प्रकट हो जाती है तथा उसके गुरूदेव के शुद्ध संकल्प का परिणाम होता है। इस विषय में मैंने अपने गुरूदेव जी की अनेक घटनाओं का स्वयं अनुभव किया है।

उदाहरण

मैं अधिकांश अपने व्याख्यानों में अपने आदरणीय भाई गोपालानन्द जी के उदाहरण दिया करता हूँ। उनकी एक घटना जो इस विषय से सम्बन्धित है उसका मैं यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ। श्री ब्रह्मचारी जी के मन में यह धारणा रहती थी कि बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त करें और उस ऐश्वर्य को पाकर दुनियाँ में अपना मान और यश बढ़ायें। ध्यान योग की उनकी स्थिति बहुत अच्छी थी। श्री गुरूदेव जी के परम अनुग्रह से वे जो कुछ भी ध्यान में देखा करते थे वह अधिकांश सत्य होता था। एक दिन उनके मन में विचार बना और वह यह कि किसी प्रकार से उनको बहुत बड़ा ऐश्वर्य प्राप्त हो जाये जिससे वह संसार में यशोपर्जन कर सकें। ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी एक अच्छे अनुभवी वैद्य थे। जिस समय वह अपने अभ्यास में बैठे उस समय सुनहरी अक्षरों में लिखा हुआ एक दिव्य औषधि योग उनके सामने आया और साथ ही आकाशवाणी हुई कि इस नुस्खे को तू बना ले, यह अमुक–अमुक रोगों पर सफल प्रयोग है। तत्काल फल देने वाला होगा, इसका अपने नाम से रजिस्ट्रेशन कराकर जब तू वाणिज्य करेगा तो तेरा व्यापार बहुत बढ़ जायेगा और तू इस धन से मालामाल हो जायेगा। श्री

ब्रह्मचारी जी ने ध्यानाभ्यास में ही यह बात जानना चाही कि वह उस नुस्खे को तैयार करने के लिये जिसमें काफी पैसा खर्च होता था वह कहाँ से उपलब्ध हो। इसका निर्णय भी श्री प्रभु जी ने ध्यानाभ्यास में ही कर दिया और एक व्यक्ति की आकृति दिखा दी कि यह व्यक्ति कल दिन के 9 बजे तुम्हारे पास आयेगा। इससे जितना भी चाहो तुम पैसा लेकर और अपने इस प्रयोग में हिस्सेदार बनाकर इसको तैयार कर लेना और फिर काम शुरू करना जिसका उत्तम फल थोड़े दिनों में तुम्हारे सामने आना शुरू हो जायेगा किन्तु श्री गुरूदेव जी का यह विचार बिल्कुल नहीं था, कि विवेक ख्याति की ओर बढ़ने वाले, आदरणीय भाई ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी वासना भोगी बनें एवं विलासिता के चक्र में अपने आपको झोंक कर परमार्थ से अपने आपको बिल्कुल च्युत बना ले। श्री गुरूदेव जी के कथनानुसार दूसरे दिन वह व्यक्ति आ ही गया और उसने काफी धन देने का लालच दिया, किन्तु उसी समय ब्रह्मचारी जी के मन में हर समय स्थाई रहने वाले भावों के अतिरिक्त एक नयी प्रेरणा हुई, और वह यह कि वह कम से कम ध्यान योग में यह तो देख लें कि ऐश्वर्य प्राप्ति के बाद में परिणाम क्या होगा? जिस समय ध्यानाभ्यास में बैठ कर उन्होंने ऐश्वर्य के दुष्परिणामों को देखा तो उनको स्वतः ही वैराग्य हो गया और उन्होंने ध्यानाभ्यास से उठकर उस व्यक्ति को उत्तर दे दिया कि भाई मैं तो अपने मन से संसार को छोड़ चुका हूँ, अब इन झंझटों में मैं पड़ना नहीं चाहता। यह श्री परम गुरूदेव की पूर्ण अनुकम्पा और उत्प्रेरणा।

एक और उदाहरण

इसी प्रकार का एक और उदाहरण मुझे स्मरण आता है। एक ब्रह्मचारी ऋषीकेश योग-साधन आश्रम में योग योगेश्वर श्री प्रभुजी गुरूदेव जी महाराज के चरणारविन्द में वास करता था। अकस्मात् उसको अपने घर से एक सूचना मिली कि उसका पिता बहुत बीमार है। उसने अपने पिता की तकलीफ में सेवा करने के लिये श्री गुरूदेव जी महाराज से आज्ञा प्राप्त की और साथ में यह भी पूछा कि वह अपने घर जाकर क्या करे और भावी जीवन का कार्यक्रम क्या होना चाहिये? श्री गुरूदेव जी ने आदेश दिया कि यह सब घर जाकर तुम्हारा पिता ही बतलायेगा। तुम इस समय जाकर खूब मन लगाकर सेवा कर लेना। सम्भव है उसका यह शरीर न रहे। इस लिये तुम अपने पिता का आशीर्वाद अवश्य प्राप्त करना। वह ब्रह्मचारी अपने घर गया और अपने पिता जी की मन लगाकर सेवा की। शनैः शनैः वह समय आ ही गया, जिसका संकेत सर्व-समर्थ श्री गुरूदेव जी ने पहिले से ही कर दिया था कि सम्भव है वह शरीर न रहे। ब्रह्मचारी के पिता योगाभ्यासी थे और कुछ ही समय पहले श्री गुरूदेव जी से योग दीक्षा प्राप्त की थी, जिसके फलस्वरूप उनका ध्यान योग भी अच्छा चलता था। वे ध्यानाभ्यास से अपने आपको पवित्र बना चुके थे, किन्तु नश्वर शरीर का पतन होता ही है। समय आ गया और उस अन्तिम काल में ब्रह्मचारी ने अपने पिता से कोई आज्ञा प्राप्त करनी चाही व उनके पिता जी ने उनको आदेश दिया कि बेटा मेरा यह अन्तिम समय है। मैं एक घण्टा या आधा घण्टा तुम्हारे

पास और हूँ। इस समय तुम अपना मन मेरी तरफ लगाओ, ताकि मेरी चित्त वृत्ति तुम्हारी ओर न बदले। वैसे मेरी यही आज्ञा है कि तुम श्री गुरुदेव की आज्ञाओं का ही पालन करना। कोई कदम उनकी आज्ञा के विरूद्ध न उठाना यही कल्याणकारी होगा। उस ब्रह्मचारी ने अपने पिता के आदेशों को अपने मन में रख लिया और जिस समय वह अपने पिता के देहावसान के बाद लौटकर आया तो श्री प्रभु जी ने आते ही पूछा कि बेटा तुम्हारे पिता ने तुम्हें क्या आज्ञा दी? उसने अपने पिता के अन्तिम समय का सब वृतान्त कह सुनाया और अपने जीवन को उसी प्रकार लगा दिया, जिस प्रकार का निर्देश श्री प्रभुजी ने उसके पिता के मन में प्रेरणा करके उसके मुख से कहलाया और अपने उस बच्चे को पहिले से ही विरक्त रूप से लोकहित कार्यों में लगाया हुआ था। यह है श्री गुरुदेव जी की तीसरी प्रेरणा। यह प्रेरणा साधक को उत्तरोत्तर बल देती रहा करती है। सर्व–समर्थ गुरुदेव या दूसरे शब्दों में वह सर्वशक्तिवान् परमात्मा जो सर्वव्यापक है और सर्वान्तर्यामी है, उत्तम अधिकारी को अपने आप ही इस प्रकार की प्रेरणा देता रहता है जिससे उसकी मदद होती रहे और साधक ऊँचा बढ़ता रहे। यह परमावश्यक है कि योग की इस निधि को अपने अन्दर विलीन कर लेने के लिये साधक को अपना जीवन तपोमय रखना चाहिये। शास्त्र का कथन है:–

नातपस्विनो योगः सिध्यति।

अर्थात्–जो व्यक्ति तपस्वी नहीं है उसको योग सिद्ध नहीं हुआ करता। जो तप व ब्रह्मचर्य के द्वारा अपने अन्तःकरण को शुद्ध कर लेता है, उस व्यक्ति को बराबर श्री सद्गुरुदेव जी की अन्तः प्रेरणायें प्राप्त होती रहा करती हैं। इसलिये जहाँ संयम के विषय में भगवान पतंजलि देव ने:–

तस्य भूमिषु विनियोगः

यह सूत्र लिखा है, वहाँ पर व्यासदेव जी ने इसके भाष्य में संयम का क्रमशः योग भूमिकाओं में विनियोग करने का अर्थ स्पष्ट करते हुए साथ–साथ ये शब्द भी पूर्ण रूपेण लिख दिये हैं:–

ईश्वर प्रसादाज्जितोत्तर भूमिकस्य च
नाधर भूमिषु परचित्तज्ञानादिषु संयमो युक्तः।

अर्थात्–ईश्वरानुग्रह से जिस योगी ने उत्तर भूमियों में जय प्राप्त किया है उसको अन्य भूमियों में संयम करने की आवश्यकता नहीं रहती और ऐसे योगी को:–

इयमन्तरा भूमिरित्यत्र योग एवोपाध्यायः

अर्थात्–योगी के उर प्रेरक गुरुदेव की प्रेरणायें स्वतः ही प्राप्त रहा करती हैं, और उसे जिन–जिन भूमियों में संयम करना है वे स्वतः ही सामने प्रकट होती रहा करती हैं। इसी आशय

को लेकर योगाचार्यो ने यह श्लोक कहा है –

योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात्प्रवर्त्तते।
योऽप्रमत्तस्तु योगेन स योगे रमते चिरम्।।

अर्थात् – योग से ही योग की प्राप्ति होनी चाहिये और योग से ही योग प्रवृत्त होता है। जो लोग प्रमाद रहित होकर योगाभ्यास करते हैं वे लोग साधन रूपेण संयम का अभ्यास करते हैं। वह तो करना ही चाहिये किन्तु प्रबल पुण्य के फल स्वरूप जिसको पूर्ण सिद्ध गुरूदेव की प्राप्ति हो गयी है और सुकर्मा साधक अपने गुरूदेव के चरणारविन्द पर तन मन से न्योछावर है तथा तीसरी प्रकार उत्प्रेरणा को प्राप्त करने का अधिकारी अपने आपको बना लिया जाता है वह अवश्य ही संयम बल को प्राप्त कर लेता है और आगे–आगे बढ़ता चला जाता है। हमने यहाँ अभ्यासी साधकों को श्री गुरूदेव जी की प्रेरणा किस–किस प्रकार से प्राप्त होती है, यह प्रकरण खोल कर समझाने का प्रयत्न किया है। गुरूदेव परम तत्व हैं जिसके विषय में हमारे शास्त्र कहते हैं –

नास्ति तत्वं गुरोः परम।

इस युक्ति को सामने रखते हुए साधक को अपने गुरूदेव के चरणाविन्द का भँवरा बन कर रहना चाहिए। शास्त्र आज्ञा देता है –

मातृवान् पितृवान् आचार्यवान् पुरूषोवेद।

अर्थात् – जिसने मातृ शिक्षा को प्राप्त किया, पिता की शिक्षा को पाया एवं आचार्य की शिक्षा को प्राप्त किया है वही मनुष्य परमतत्व का ज्ञाता हुआ करता है। माता अपने बच्चे के मन को सत् शिक्षा देकर पहले से प्रभावशाली बना देती है। उसके बाद पिता का कार्य आ जाता है। वह अपने पुत्र को दिनचर्या का पाठ सिखाता है। अच्छे विद्यालयों में अध्ययन के लिये भेजता है और उसके जीवन में उत्तम विकास कराता है। पिता देखता है कि बच्चे में कोई दुराचरण तो पैदा नहीं हो रहा है। उसके बाद वह बच्चा आचार्य की शरण में जाता है। गुरूकुल के आचार्य उस बालक को पूर्ण नियंत्रण में चलाते हैं। वैदिक शिक्षा देते हैं, दुर्व्यसनों से बचाते हैं, एवं आत्मचिन्तन की ओर अग्रसर करते हैं। इस विधि से तैयार किया हुआ बालक उस परम आचार्य, तत्वों के ज्ञाता परम गुरूदेव की आत्मिक प्रेरणा को प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है और वह शनैः–शनैः ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा होकर निर्बीज समाधि को प्राप्त कर लेता है। अतः यह परमावश्यक है कि साधक संयम बल को प्राप्त करने के लिये तपश्चर्या और ब्रह्मचर्य वृत्ति के साथ–साथ ईश्वर कृपा व श्री गुरूदेव के अनुग्रह को भी अपनी सेवाओं से उनके मन को प्रसन्न करके अवश्य प्राप्त करें, तभी संयम सिद्धि के पवित्र फल को प्राप्त कर सकेगा।

●●●

'सिद्धयोग'-हमारी प्यारी पत्रिका

प्रिय पाठकवृन्द/भाई-बहिन

जय गुरुदेव की!

क्षण-क्षण स्मरणीय गुरुदेव योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के संकल्प से प्रकट कल्पवृक्ष के रूप में हमारी पत्रिका **'सिद्धयोग'** अपनी आयु के 41 वर्ष पूरा करके अप्रैल विशेषांक के साथ ही 42 वें वर्ष में प्रवेश पा रही है। श्री गुरुदेव भगवान् ने इस पावन वृक्ष का आरोपण सन् 1968 में किया था, जिसका एक मात्र लक्ष्य था कि योग जिज्ञासु इसके माध्यम से योग तत्त्व व सिद्धान्त को समझ लें जिससे योग मार्ग पर चलकर आध्यात्मिक उन्नति के चरम लक्ष्य की ओर वे चल सकें। आज के इस विकासशील युग में भौतिक उन्नति के साथ-साथ धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में भी जागरूकता आ गई है। इसी क्रम में धार्मिक व आध्यात्मिक पत्र पत्रिकाओं का भी समाज में व्यापक प्रचार कार्य चल रहा है किन्तु **'सिद्धयोग'** जिस प्रकार से योग के सैद्धांतिक दुरुह व दुर्बोध्य पक्ष को अत्यन्त सरल भाषा में बोधगम्य बना देती है ऐसा दूसरी पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलता।

'सिद्धयोग' गुरुदेव से सम्पर्क बनाये रखने का सक्षम माध्यम है। साधक घर बैठे ही गुरुदेव के उपदेश एवं आज्ञाओं का संकेत पा जाया करते हैं। पत्रिका के माध्यम से श्री गुरुदेव की आत्मिक शक्ति का संचार शिष्यों में होता रहता है। साधकों के मन में उठने वाले संशयों का निवारण भी इससे हो जाता है।

वेदान्त प्रक्रिया में आत्म दर्शन की ओर चलने के साधन के रूप में तीन अंगों का वर्णन किया गया है। वेदान्त का सिद्धान्त है- **आत्मा व अरेद्रष्टव्यः, श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः।** अर्थात् आत्मा का दर्शन करना चाहिए। इसके लिए सर्वप्रथम श्री गुरुदेव के मुख से आत्म तत्त्व के विषय में श्रवण करना चाहिए। श्रवण करने के पश्चात् मनन करना चाहिए। ठीक प्रकार से मनन हो जाने पर निदिध्यासन में बैठना चाहिए। निदिध्यासन ही योग की भाषा में ध्यान-योग का अभ्यास कहलाता है। श्री गुरुदेव जब शिष्य को उपदेश करते हैं तो शब्द के माध्यम से शिष्य पर शक्ति संचार होता है। योग के ग्रन्थों में शक्तिपात के अनेक प्रकार की दीक्षाओं का वर्णन मिलता है। इनमें संकल्प दीक्षा, स्पर्श दीक्षा, दृग दीक्षा, हार्द दीक्षा आदि दीक्षाओं का वर्णन है। गुरुदेव दीक्षा दान के समय गुरु मंत्र के माध्यम से शिष्य के दाहिने कर्ण में शक्ति का संचार करते हैं। आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान् ने **'सिद्धयोग'** परम्परा को अक्षुण्ण रखा है। सिद्धयोग के पठन से कोई भी योग जिज्ञासु योग की परिभाषा, स्वरूप , विधि एवं लक्ष्य समझ सकता है। श्रद्धालु साधकों ने सिद्धयोग के माध्यम से ही गुरुदेव के दर्शन एवं कृपालाभ होते देखा गया है। जीवन से परेशान कई व्यक्तियों को सन्मार्ग मिला और जीवन की धारा ही

बदल गई। पत्रिका के पठन–पाठन एवं अनुशीलन से उत्साह, उल्लास एवं मार्ग दर्शन मिलता है। योग शास्त्र अत्यन्त गहन है इसके दुरूह विषयो को समझना बहुत कठिन है, किंतु सिद्धयोग ने इसे अत्यन्त सरल एवं सुबोध्य बनाया है। पत्रिका का अध्ययन साधक के अन्दर श्रद्धा का बीज बो देता है जिसे योग साधना की नींव माना गया है। जिसमें सम्यक् श्रद्धा नहीं है वह विनष्ट हो जाता है। भगवान के गीता में वचन है– '**संशयात्माविनश्यति**' अर्थात् संशय युक्त व्यक्ति पथ भ्रष्ट होकर पतन की ओर चला जाता है, इसलिए सिद्धयोग श्रद्धा एवं स्वाध्याय का अचूक साधन है। साधक को स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुदेव अपने शिष्यों को उपदेश करते हुए कहते हैं कि '**स्वाध्यायाद् मा प्रमदितव्यम्**' अर्थात् स्वाध्याय में कदापि प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरु मन्त्र का जाप भी उत्तम श्रेणी का स्वाध्याय है, इसमें प्रमाद या लापरवाही नहीं करनी चाहिए। अस्तु!

पत्रिका के लिए गुरुदेव के समय से ही किसी प्रकार विज्ञापन आदि सामग्री प्रकाशनार्थ स्वीकार कर वित्तीय आय जुटाने अथवा सहायता प्राप्त करने का उद्देश्य नहीं रहा है वह आज भी यथावत है। 25–30 हजार रुपये का वार्षिक घाटा सहन करके भी पत्रिका अबाध गति से प्रकाशित हो रही है। यह सब पूज्य गुरुदेव जी की कृपा का ही फल है। उदारमना गुरु भाई–बहिनों के आर्थिक सहयोग से घाटे की पूर्ति हो जाती है।

अन्त में उन सभी मनीषी विद्वान लेखकों एवं रचनाकार कवियों के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनके उत्कृष्ट योगपरक लेख एवं सारगर्भित रचनाओं से पत्रिका की महत्ता व शोभा बनी हुई है। मैं उनसे इसी प्रकार अपनी रचनायें, लेखादि निरन्तर भेजते रहकर स्नेह भाव बनाये रखने का नम्र अनुरोध करता हूँ। पत्रिका के पाठकों व ग्राहकों से भी निवेदन करूँगा कि वे नियमित ग्राहक बने रहें तथा कम से कम 5 नये सदस्य अवश्य जोड़ें। इस दिशा में गंगापुर मंडल, कानपुर मंडल व सहारनपुर मंडल के साधकों का प्रयास वस्तुतः स्तुत्य है। इस अंक के साथ ही वार्षिक ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो रहा है, अतः समय पर आगामी वर्ष के लिए शुल्क 130/– भेज दें।

वर्ष 2008 में हमारे कई वरिष्ठ गुरुभाई भौतिक देह को त्यागकर परम धाम को चले गये। इनमें देवी सिंह सिसोदिया, भुवनेन्द झा, रमेश चन्द दीक्षित आदि स्मरणीय हैं। हम सब का यह देह अनित्य है। इस बात को समझकर अपने चित्त को गुरुदेव के बताये गये ध्यान योग में लगाये रखना चाहिए, यही हमारे लिए करने योग्य सर्वोत्तम कर्म है।

आप सभी के लिए आने वाला वर्ष मंगलमय हो। आनन्दकन्द श्री प्रभु जी का परम पावन प्राकट्य दिवस श्री रामनवमी योग महोत्सव के रूप में संवाई आश्रम आगरा में 1, 2, व 3 अप्रैल को बड़े हर्षोल्लास व धूमधाम से मनाया जायेगा, सभी श्रद्धालु भक्त उसमें सम्मिलित होकर श्री प्रभु जी की कृपा कोर को पाकर जीवन को धन्य बनायें। इस अवसर पर श्री प्रभु जी के चरणों में सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

आपका

(डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

श्री बृज किशोर का कष्ट निवारण

केशव देव उपाध्याय

उत्तर प्रदेश के बलिया जनपद के देहात क्षेत्र के हमारे एक गुरुभाई है, जिनका नाम श्री महेन्द्र पाण्डेय है। इनको दो पुत्र तथा दो पुत्रियां है। इनका बड़ा लड़का वाराणसी (काशी) में रहकर स्नातक कक्षा में विद्याध्ययन कर रहा है। शेष परिवार बलियां जनपद के देहात क्षेत्र में ही निवास करता है। श्री भाई जी वाराणसी शहर में सरकारी विभाग में कार्यरत है। इनके परिवार पर श्री प्रभु जी की कई कृपायें हुई है, जिसमें से कुछ का वर्णन किया जा रहा है।

पहली मुख्य कृपा सन् अस्सी के दशक की है। श्री भाई जी की पत्नी एक धर्म परायण महिला है तथा श्री गुरुदेव भगवान के चरण कमलों में उनकी अनन्य श्रद्धा है। वे प्रातः काल पौने चार बजे बिस्तर छोड़ देती है तथा नित्य क्रिया से निवृत्त होकर प्रातः पाँच बजे से पूर्व ही श्री योगेश्वर द्वय का आरती पूजन करके ध्यान एवं मंत्रजप करना आरम्भ कर देती है। सायंकाल भी ये सात बजे से साढ़े आठ बजे तक आरती–पूजा–मंत्रजप तथा ध्यानाभ्यास में रहती है।

सन् अस्सी के दशक का मई माह था। ये शौच होने के लिये घर से बाहर खेत में गई (कारण यह है कि इनके मकान में इस समय भी शौचालय की सुविधा नहीं है।) एवं शौच होने के बाद, जब अपने मकान को लिये चली, तो इनके पीछे–पीछे मात्र दस कदम की दूरी पर हुंकार भरते हुये एक भैसा चलने लगा। भैसे की हुंकार सुन जब इन्होंने पीछे देखा, तो भय वश इनका शरीर कापने लगा तथा इनके मुख से अनायास यह वाक्य निकलने लगा कि गुरुजी मेरी रक्षा करो, गुरु जी मेरी रक्षा करो। इनके मुख से निकला दूसरा वाक्य अभी समाप्त भी नहीं हुआ था कि इन्होंने खुली आँखो देखा कि भैसा रूपधारी प्रेत गायब हो गया तथा करीब इनसे पन्द्रह कदम पीछे, अखिल ब्रह्मांड नायक परम योग योगेश्वर दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज; अपने हाथ में त्रिशूल लेकर खड़े है। उन्होंने अपनी मनोहारी मधुर मुस्कान के साथ कहा कि मेरे बच्चो को कहीं भी एवं कभी भी डरने की आवश्यकता नहीं है, चलो मैं तुम्हें, तुम्हारे घर पहुँचा देता हूँ। इतना कहने के पश्चात्; जब अनाथ–नाथ ने आगे बढ़ने का आदेश दिया तो ये घर की तरफ चल दी तथा श्री महाप्रभु जी इनके अपने घर में प्रवेश करने तक पीछे–पीछे आये। उनके चिन्मय शरीर से निकलने वाले आध्यात्मिक प्रकाश में ही इन्होंने अपना रास्ता भी तय किया।

दूसरा कृपा प्रसंग भी सन् अस्सी के दशक का है; परंतु पहले कृपा प्रसंग के बाद का है। गाँव पर इनके पड़ोस में भी एक ब्राह्मण का मकान है, जिसमें उसके परिवार के लगभग तेरह सदस्य निवास करते हैं। यह परिवार प्रेत बाधा से अत्यधिक पीड़ित है एवं असह्य कष्टों को कराहते हुये सहन कर रहा है। अपने परिवार के कष्ट निवारण के लिये इस परिवार के मुखिया ने

एक तान्त्रिक को अपने घर बुलाया। उस तान्त्रिक ने उनके घर की प्रेत बाधा को एक लाल रंग के करीब एक मीटर कपड़े में लालफूल, कसौली, अक्षत, रोली, मिष्ठान और पैसों के रूप मे एक पोटरी बनाकर रात के बारह–एक बजे के मध्य इनके छत पर फेंकवा दिया। इसके पूर्व तान्त्रिक ने करीब चार–पांच घंटे आसुरी पूजा–पाठ किया एवं इसके बाद पोटरी फिकवाई। उस तान्त्रिक ने उस ब्राह्मण परिवार को यह आश्वासन दिया था कि, हमने आप की सभी प्रेत बाधा को आप के पड़ोसी (हमारे, आप के गुरुभाई–बहन) के घर भेज दिया है। अब आप लोग आराम से रहेंगे तथा आप का पड़ोसी प्रेत बाधा से परेशान रहेगा। उस तान्त्रिक बेचारे को क्या पता था कि वह किसके घर निमंत्रण दे रहा है? उसने तो ऐसे घर में निमंत्रण दे दिया, जहाँ से निमंत्रण रात को ही तीन गुना होकर वापस आ गया।

तान्त्रिक तो सूर्योदय से पूर्व ही हमारे गुरुभाई के पड़ोसी के घर से अपने घर को प्रस्थान कर गया। हमारे गुरुभाई के पड़ोसी आज काफी प्रसन्नता एवं सुख का अनुभव कर रहे थे। वे सब सोच रहे थे कि हमारे परिवार की सभी बीमारी एवं प्रेत बाधा तो अब पूर्ण रूपेण दूर हो गई एवं हमारा पड़ोसी खूब अच्छी प्रकार से कष्ट के भंवर जाल में फंस गया है।

पड़ोसी के घर तो ये बातें हो रही थी, अब अपने गुरुभाई के घर चलते हैं, देखा जाये कि यहाँ क्या हो रहा है? हमारी इस गुरुबहन ने नित्य की तरह आज भी पौने चार बजे प्रातःकाल उठकर एवं नित्य क्रिया से निवृत्त होकर पौने पांच बजे अत्यधिक आनन्द, उत्साह और श्रद्धा के साथ अपने घर के पूजा गृह में विराजमान श्री योगेश्वर द्वय का आरती पूजन किया एवं उसके बाद श्वास–प्रश्वास से अपना श्री गुरुमंत्र जपना आरम्भ किया। लगभग एक घंटे जप करने के बाद उसे यह ओजस्वी वाणी सुनाई दी, "लल्ली! तुम्हारे मकान की छत पर तुम्हारे (अमुक) पड़ोसी ने तान्त्रिक द्वारा क्रिया कराके अपनी प्रेत–बाधायें एवं बीमारियाँ लाल रंग की पोटरी में कुछ अन्य सामानों के साथ बांधकर फेंक दिया था। मैंने तत्काल ही उसकी बाधायें एवं बीमारियाँ "ज्यों की त्यों" लौटा दी जहाँ से ये आई थीं।" तुम छत पर बिल्कुल निडर होकर जाओ। गठरी (पोटली) खोलकर, चाहो तो सामानों का स्वयं अपने घर प्रयोग करना, या किसी गरीब ब्राह्मण को दान कर देना, अथवा किसी भिखारी को दे देना। अब उन सामानों का चाहे जो भी उपभोग करे, किसी का भी अनीष्ट या अहित नहीं होगा।" ये सभी बातें आराध्यदेव श्री गुरुदेव भगवान की अमोघ वाणी में थी।

श्री गुरुदेव भगवान के श्रीमुख की ये बातें सुनकर हमारी गुरुबहिन अतीव आनन्द का अनुभव करने लगी तथा उसकी आंखों से अश्रुपात होने लगा। उन्होंने अपने परिवार के सभी सदस्यों से श्री गुरुदेव भगवान की वाणी एवं उसका रहस्य बतलाया एवं पारिवारिक सदस्यों के साथ छत के ऊपर जाकर देखा कि लाल रंग की गठरी में सामान रखा है। उसे श्री गुरुदेव भगवान का स्मरण करते हुये खोला। उस लालरंग की गठरी में करीब सौ रुपये सिक्के के रुप में तथा लगभग चार सौ रुपये का अन्य सामान था। उसने दिन में भिक्षाटन करने आये एक गरीब ब्राह्मण भिखारी को वह सामान दे दिया और वह अनेकानेक आशीर्वाद देते हुये गया। इनके इस

पड़ोसी ने तो मान रखा था कि कल से गुरुदेव नमामि–नमामि करने वाला यह परिवार अत्यधिक कष्ट के कारण कराहने लगेगा, परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ, अपितु उसका भेजा हुआ रोग फिर उसे ही परेशान करने लगा। पड़ोसी का मुखिया फिर तान्त्रिक के पास गया एवं आप बीती, अपनी बात विस्तार से बतलायी। तान्त्रिक ने कहा कि अच्छा हम अभी बताते है। तान्त्रिक करीब आधे घंटे तक आंख बन्द कर बैठा रहा एवं उसके बाद आंख खोलकर बोला, "पंडित जी, आप का पड़ोसी, जिस पर मैंने तंत्र क्रिया की थी, का इष्ट अपरिमित आध्यात्मिक शक्ति वाला है एवं उसका अहित करने की ताकत किसी मे नहीं है। अब आप की भी भलाई इसी में है कि आप उस परिवार से मित्रता कायम कर ले, अन्यथा उस परिवार के लोग यदि आपका नुकसान करना चाहें, तो आप का ही नुकसान होगा, उसको कोई नहीं रोक सकता।"

तान्त्रिक की बातें सुनकर वे अपने घर वापस लौट आये एवं हमारे गुरुभाई के परिवार से मित्रता करने मे लग गये, जो आज भी चल रही है।

हमारे गुरुभाई जी के एक अन्य पड़ोसी ने, एक लड़के द्वारा जो इनके गाँव से वाराणसी आ रहा था, यह कहते हुए कि यह माँ काली का प्रसाद है; मालपूआ, खास्ता, नमकीन, लड्डू एवं फल तथा कई अन्य प्रकार के मिष्ठान, इनके वाराणसी वाले क्वाटर पर भिजवाया एवं यह भी संदेश भिजवाया की इसका सेवन भगवान का स्मरण कर श्रद्धा के साथ कीजियेगा। हमारे गुरुभाई बहनों की एक विशेषता देखने को मिलती है। उनके भगवान एवं परमात्मा तो श्री गुरुदेव एवं श्री गुरुदेव ही है। उनका कोई दूसरा भगवान है ही नहीं। वाराणसी में नौकरी करने वाले हमारे बलिया जनपद निवासी इस भाई के परिवार ने उस प्रसाद को गुरुदेव भगवान का स्मरण कर श्रद्धा के साथ सेवन किया। इनके बाद श्री भाई जी के ज्येष्ठ पुत्र को भीषण ज्वर हो गया तथा उसके पेट में अजीब प्रकार का दर्द था। इस समय इस बालक की अवस्था लगभग पच्चीस साल (वर्ष) की है। हमारे ये गुरु–भाई बहन इस समय, जिस समय की यह घटना है अपने देहात वाले गाँव गये हुये थे जो बलिया जनपद में पड़ता है। यह घटना सन् दो हजार चार के अगस्त माह की है। घटना के समय मात्र दोनों इनके लड़के ही मकान पर थे। छोटे लड़के की उम्र मात्र दस वर्ष की थी एवं वह छठवीं कक्षा में पढ़ रहा था। बड़ा भाई भीषण ज्वर एवं पेट के दर्द से कराह रहा था, सायंकाल का समय था, छोटे बालक को कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाये? इस बच्चे की रिश्तेदारी की एक बुआ जी करीब एक किलोमीटर की दूरी पर, इसी वाराणसी में अपनी मकान में रहती है तथा हमारी गुरुबहन भी है। वह साईकिल से उनके घर गया एवं अपनी बुआ जी से बताया कि भैया की तबियत ज्यादा खराब है, माता–पिता जी गाँव गये हुये हैं, मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा है, क्या किया जाये? उसकी आदरणीय बुआ जी ने उसे बैठने को कहा, एवं चाय–नाश्ता वगैरह कराना चाहा परन्तु उसने नम्रता के साथ कहा कि मैं अभी जा रहा हूँ, भैय्या ज्यादा परेशान है एवं वह अपने क्वाटर अपने भाई के पास वापस आ गया। उसकी बुआ जी ने उसके माता–पिता से फोन द्वारा गाँव पर बात की एवं बतलाया कि आप लोग शीघ्रातिशीघ्र वाराणसी आ जाइये, आप के बड़े लड़के की तबियत ज्यादा खराब है एवं उसके बाद अपने

पतिदेव को बताकर तथा घरेलू कार्यों का प्रबन्ध कर उसके घर पहुँच गई। वहाँ उन्होंने बालक बृज किशोर को देखा, तो उसकी तबियत चिन्ताजनक थी। उन्होंने उनके क्वाटर के पूजा गृह में विराजमान योगेश्वर द्वय के स्वरूपों की आरती की, जब आरती का अमोघ जल ये उसके ऊपर डाल रही थी, तो उसने चादर से अपना समूचा बदन ढँक लिया। आरती के बाद प्रसाद एवं रज प्रसाद उसके मुख में खिलाना चाहा, तो उसने कहा कि हमारे हाथ में प्रसाद एवं रज प्रसाद आप दे दीजिये, मैं अभी खा लेता हूँ। दो–तीन बार इन्होंने उसे ग्रहण करने का आदेश दिया, परन्तु उसने उसे ग्रहण नहीं किया। ये आज उसके क्वाटर पर ही रुक गई एवं भोजन आदि बनाकर दोनो बालकों को खिलाया–पिलाया।

दूसरे दिन प्रातः काल बालक के माता–पिता क्वाटर पर आ गये। इस समय भी बालक की हालत चिन्ताजनक बनी हुई थी एवं उसे एक सौ चार डिग्री बुखार के साथ पूरे बदन में असह्य पीड़ा थी। बालक की बुआ जी ने डाक्टर को बतलाकर तथा उसके परामर्श से दवा लेकर दी थी परन्तु रंचमात्र भी लाभ नही था। पेट का दर्द भी अपनी चरम सीमा पर था। आने के बाद माँ–बाप ने भी दवा आदि का सेवन कराया परंतु थोड़ा ही लाभ हुआ। अब बालक की बुआ जी अपने मकान के लिए प्रस्थान करने से पूर्व बालक की माता से बोली, ''लगता है कोई क्लिष्ट संस्कार आ गया है, बच्चा बड़ा ही कष्ट में है। परन्तु उदास या निराश होने की कोई बात नहीं है। हमारे श्री सद्गुरुदेव सर्व समर्थ है। अखण्ड ज्योति जलाकर दिव्य स्वरूपों के सामने रखकर अधिकाधिक जप किया करें एवं सुबह–सायं आरती वाला जल बच्चे पर डाला करो, श्री प्रभु कृपा से सब ठीक हो जायेगा।''

बालक की माता जी ने हमारी गुरु बहन द्वारा बताई गई बातों का अक्षरशः पालन किया। कल्याण तो होना ही था। हमारे आप के श्री गुरुदेव जी महाराज के मुखारविन्द से निकले ये शब्द ''जहाँ इष्ट होता है, वहाँ अनिष्ट नहीं होता'' ब्रह्म वाक्य है। असत्य हो ही नहीं सकता। दूसरे दिन ब्रह्म मुहूर्त में ही हमारी गुरुबहन ने श्री प्रभु स्वरूपों की आरती पूजा के बाद अखण्ड ज्योति जलाकर 'गुरुगीता' का पाठ किया एवं उसके बाद गुरुमंत्र जपना आरम्भ किया। बीमार बालक शौच करने के लिये शौचालय में गया। वह ज्योंही शौचालय में बैठा, उसे अपने गाँव की एक औरत की आवाज स्पष्ट सुनाई दी, वह इस प्रकार कह रही थी, ''क्यों रे! अब कष्ट और पीड़ा होने पर रो क्यों रहा है। अब तुम इसी प्रकार कष्ट सहते रहोगे। हमसे दुराव करने का यही फल मिलता है।'' यह आवाज सुन कर बालक काफी डर गया एवं बिना शौच किये ही भागा–भागा पूजा घर के पास आकर अपनी माता जी से पूरा वृतान्त बतलाया। उसकी माँ ने उसे ढाँढस बँधाया, उसे अपने हाथ से रज प्रसाद खिलाया एवं पूजा गृह में ही जमीन पर बिस्तर बिछाकर लेट कर श्री गुरुदेव भगवान एवं दादा गुरुदेव का नाम जप करने को कहा। बालक ने नाम जप धीरे–धीरे परंतु लगातार आरम्भ कर दिया। लगभग आधे घंटे ही उसने जप किया होगा कि उसे दर्द से कुछ आराम मिला एवं उसे नींद आ गई। उसके बताने के अनुसार वह योग निद्रा में था। उसने देखा कि आराध्यदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ताड़नात्मक मुद्रा

में छड़ी लिये खड़े है और उनके सामने, उसके गाँव की एक महिला गिड़गिड़ाते हुये भाव में उनसे प्रार्थना कर रही है कि भगवन्! हमसे गलती हो गई एवं आराध्यदेव उसको डांटते हुये कह रहे है, "बार बार मैं तुम्हे मना कर चुका हूँ कि ये हमारे बच्चे है, इनकी तरफ मत देखो। परन्तु तुमने हमारी बातों पर ध्यान नहीं दिया। इस बार तुम्हें इसकी सजा अवश्य मिलेगी।"

वह तान्त्रिक महिला विनीत भाव से प्रार्थना कर रही थी, "भगवन्! इस बार क्षमा करने की कृपा की जाये, फिर इस परिवार की तरफ जिन्दगी भर नहीं देखूंगी।" अनाथ-नाथ कह रहे थे, "इस बार तो तुम्हें सबक सिखाना ही है।" बार-बार प्रार्थना करने के बाद भी जब आराध्यदेव उसके प्रति दयार्द्र नहीं हुये तो उसने कहा कि आप कैसे हमें दण्ड देगें। मैं आज ही जहर खाकर आत्म हत्या कर लेती हूँ। कृपानिधान ने मुस्कराते हुये कहा, "जहर खाकर ही देख ले, तुम्हारी मृत्यु जहर खाने से भी नहीं होगी। तुम्हें असह्य शारीरिक पीड़ा का बोध कराना अब आवश्यक है। अब तुम उस कष्ट का अनुभव करोगी एवं चाहे जो भी प्रयत्न कर लो, कुछ महिने भक्षान कष्ट भोगने के बाद ही तुम्हारा शरीरान्त होगा। यदि हमारी बातों पर तुम्हें विश्वास नहीं है तो तुम कई दिन तक लगातार जहर खाओ।" श्री प्रभु जी! (आराध्यदेव श्री गुरुदेव जी महाराज) उससे यह बता रहे थे और वह महिला अब बार-बार विनीत भाव से क्षमा की भीख मांग रही थी।

आखिर ठहरे तो अवढर दानी, दयार्द्र हो ही गये। अपने मुखारविन्द से आदेश दिया, "हमने जो कह दिया, सो कह दिया; वैसा तो होगा ही होगा। बार-बार मना करने के बाद भी तुमने हमारी आज्ञा नहीं मानी, अतः तुम्हें शारीरिक कष्ट का बोध कराना आवश्यक था। तुम्हारी प्रार्थना का लाभ तुम्हें समझो मिल गया। तुम्हारी मृत्यु हमारे संकल्प से होगी, अतः अगला जन्म तुम्हारी वृत्ति के सुधार से आरम्भ होगा।" इतना कहकर जब श्री आराध्यदेव जी उसे आगे की बात बता रहे थे, तब तक बालक बृज किशोर की योग निद्रा भंग हो गई एवं उठकर बैठ गया। उसने स्वप्न में देखी, सब बातें अपनी माता जी को बतलाई एवं उसकी माँ से यह बातें हमें ज्ञात हुई।

"योगी वचन पलटे नहीं, पलट जाये ब्रह्माण्ड" वाली बात चरितार्थ हुई। सर्व समर्थ गुरुदेव के मुखारविन्द से निकली वाणी के फलस्वरूप वह तांत्रिक महिला ने उसी दिन से कष्ट भोगना आरम्भ कर दी। वह लगभग पन्द्रह दिन में पूर्ण रूपेण रोग ग्रस्त हो गई एवं इधर चि. बृज किशोर बिना किसी औषधि के पूर्ण रूपेण स्वस्थ हो गया। लगातार आठ माह तक असह्य शारीरिक एवं मानसिक कष्ट झेलने के बाद, उस महिला का अब से कुछ दिन पूर्व शरीरान्त हुआ। श्री प्रभु की इस कृपा के कई चश्मदीद गवाह आज भी मौजूद है।

अगाध करुणा वरुणालय श्री सद्गुरुदेव जी महाराज की कृपाओं का स्मरण होते ही मन रोमांचित हो उठता है और कई घंटे तक अखण्ड आनन्द का अनुभव करता है। अखण्ड ब्रह्मचारी परम पूज्य बजरंग बली की कृपा से आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त महात्मा श्री तुलसी दास की वाणी:-

भाव कुभाव अलख आलसहू।

नाम जपे मंगल दिशि दसहूँ।।

बिल्कुल चरितार्थ सत्य उजागर करती है। श्री आराध्यदेव से सम्पर्क चाहे जिस प्रयोजन से हो वह प्राणी मात्र के कल्याण का कारण ही बनेगा। अतः जीव मात्र को उनका सदैव स्मरण करते रहने का प्रयास करना चाहिये। श्री आराध्यदेव जी द्वारा पोषित हम सभी गुरुभाई बहनों को उनकी आज्ञाओं को अक्षरशः पालन करने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। अन्त में आराध्यदेव के युगल चरणों में साष्टांग प्रणाम के साथ यही प्रार्थना है:-

अब प्रभु कृपा करहु येहि भाती।
सब तजि भजन करहूँ दिन-राती।।

●●●

रहस्य

उनका रहस्य कौन जान सकता है। वे सब में समाये हैं, परंतु कोई उन्हें नहीं पकड़ पाता। मर्म का नाम ही रहस्य है। भगवान् श्रीकृष्णरूप में प्रकट हुए, उस रूप में बहुत लोगों ने उन्हें भगवान् नही समझा। कोई ग्वाल बालक समझता था तो कोई वसुदेव पुत्र। जो महात्मा पुरुष उनको भगवान् के रूप में जान गये, उन्हीं पर उनका रहस्य प्रकट हुआ। प्रभु के रहस्य को जान लेने पर चिन्ता, दुःख और शोक का तो कहीं नाम-निशान ही नहीं रहता। प्रभु सब जगह विराजमान हैं, इस रहस्य को जानना चाहिए। अर्जुन भगवान् के रहस्य को कुछ जानते थे और उनसे रथ हँकवाते थे, परंतु वे भी भगवान् के विश्वरूप को देखकर भय और हर्ष के मिश्रित भावों में डूब गये। तब भगवान् ने कहा- 'भय मत कर!' जब तक अर्जुन को भय हुआ तब तक उन्होंने भगवान् के पूरे रहस्य को नहीं समझा। पहचानना तो वस्तुतः यथार्थ में प्रहलाद् को था, जो भगवान् नृसिंहदेव को विकराल रूप में देखकर भी बेधड़क उनके पास चले गये। प्रहलाद् को किंचित् भी भय नहीं हुआ। इसी प्रकार परमात्मा के रहस्य को जानने वाला सर्वदा सर्वत्र निर्भय हो जाता है।

प्रभू जी तुम्हें बार–बार बलिहारी

जगदीश राए बंसल ''अधम'', दिल्ली

संवाई छोड़ हिमालय जाना, ये प्रभुजी विचारी।
नहीं जाना कहीं बाबा जी, भगतन करें पुकारी।।
प्रभु जी तुम्हें बार–बार बलिहारी।।।
कई दिनों से मन में ठानी, हम हिमालय जाएंगे,
कितने सारे साधक योगी, हमसे दीक्षा पाएंगे।
मिलेंगे जो भी दुराचारी, सबको मार्ग दिखलाएंगे,
पृथ्वी का भार उतारन को, करेंगे लीला न्यारी।। प्रभुजी..........
महाप्रभु जी का आदेश हुआ, यहाँ से सबको जाना है,
गुफा के अन्दर जा कर हमको, लम्बी समाधी लगाना है।
मनोभाव भक्तों ने समझा, ये बाबा और कहीं जाना है,
भक्त गुलाब को आगे करके, करी प्रार्थना न्यारी न्यारी।। प्रभूजी ....
लीला न्यारी लीलाधर की, लल्ला तुम धीरज धरो,
हम जाते हैं गुफा के अन्दर, बाहर से ताला बन्द करो।
जनता सारी भ्रमित हो गई, बोले द्वार पर पहरा भरो,
अर्ध रात्रि वो बाहर आ गए, अणीमा सिद्ध पुरारी।। प्रभूजी..........
गुफा के बाहर सर्व समर्थ ने, स्थूल रूप बना लिया,
आकाश मार्ग से उड़े सिद्धेश्वर, हिमालय को लक्ष्य किया।
सूखा धीमर हल चलाये, आकाश में था ध्यान गया,
भयभीत हुआ पसीना आया, यह क्या बला है आई ?।। प्रभूजी........
सिद्धेश्वर जी भूतल उतरे, क्या मैं नहीं पहचाना हूँ,
डरो नहीं सूखा कोई और नहीं, मैं गुफा वाला बाबा हूँ।
नहीं कहना गाँव मे जाकर, मैं हिमालय पर जाता हूँ,
सूखा भाग संवाई आया, गली–गली आवाज लगाई।। प्रभूजी..........
संवाई में हल–चल मचगी, गुफा पर भारी भीड़ हुई,
ताला तोड़ कर जावण लागे, थी अन्दर कुन्डी लगी हुई।
और कोई चारा नहीं भैय्या, एक दिवार थी तोड़ देई,
भक्त ज्वाला नीचे उतरा, वो गुफा थी खाली पाई।। प्रभूजी.........
जन समूह रोवण लागा, अब हम कैसे जिएँगे,
बिगड़ जाएं संस्कार हमारे, बाबा कहाँ पर पाएंगे।
तब गुफा से आवाज सुनी, हम बीस साल में आएंगे,
पहचान सको पहचान लेना, जिसकी कला सवाई।। प्रभूजी..........
जाते–जाते प्रभुजी ने योगामृत से वर्षा किया,
मिले जो भी योगी साधक, सब पर शक्तिपात किया।
श्री रामरती दुराचारिणी, माँ दुर्गा का दर्जा दिया,
गुरु चन्द्र मोहन सतपथ से रोके, ''अधम'' के रखवारी।। प्रभू जी........

अष्टांग योग-2

डॉ. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

(...ष्ठ से आगे)

मन की कोई भी इच्छा या भावना प्रकृति के गुणों का ही परिणामक्रम है। प्रकृति के यही गुण जीवात्मा को शरीर की सीमा में बाँधकर रखते हैं और इसी शरीरसम्बन्ध से बनता है उसका संसार। यह संसार जीवात्मा के चित्त में सूक्ष्म में संकल्प के रूप में रहता है। संकल्प का स्थूलरूप इन्द्रियाँरूपी पर्दे पर दिखाई देता है तथा सूक्ष्मरूप मन तथा बुद्धिरूपी पर्दे पर। परमात्मा प्रकाश किरणों की असक्त भूमिका निभाता है जबकि जीवात्मा दर्शक की। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में प्रकृति से उत्पन्न गुण तथा विकार वैज्ञानिक उपकरण का कार्य सम्पादन करते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने वैज्ञानिक उपकरण समेत दृश्यजगत को क्षेत्र कहा है तथा परमात्मा को क्षेत्रज्ञ और जी ात्मा को भोक्ता। गीता के अनुसार–

महभूतानि अहंकारो बुद्धिः अव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकवपंचचेन्द्रियगोचराः।।
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृति।
एतद् क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्।।
क्षेत्रज्ञं अपि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः ज्ञानं यत्तद् ज्ञानं मतं मम।।

अर्थात पंच महाभूत, अहंकार, मन, बुद्धि, दश इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के पंच विषय तथा मन–बुद्धि के ार इच्छा, राग–द्वेष, सुखदःखादि द्वन्द, धृति, प्राणशक्ति आदि संक्षेप में उनके विकारों सहित सब क्षेत्र कहा जाता है तथा चित्तवृत्तियों का सदैव ज्ञाता क्षेत्रज्ञ परमात्मा ही है तथा क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ का ज्ञान ही परमात्मज्ञान है। अब मैं परमात्मा के ही श्रीमुख से कही गयी यह बात बताना चाहता हूँ कि संसार क्या है, कैसे चलता है और उसके दुःखों से मुक्ति का सरलतम उपाय क्या है?

अधश्चोर्ध्व प्रसृताः तस्य शाखाः।
गुणप्रवृद्धाः विषयप्रवालाः।।
अधश्च मूलानि अनुसन्तितानि।
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।।
न रूपमस्येह तथोपलभ्यते।
नान्तो न चादिः न च सम्प्रतिष्ठा।।

अश्वस्थमेनं सुविरूढ़मूलम्
असंगशस्त्रेण दृढ़ेन छित्वा
तत्पदं तत्परिमार्गितव्यम
यस्मिन् गता: न निवर्तन्ति भूय:।।

अर्थात् यह माया का संसार ऐसे विलक्षण पीपलवृक्ष के समान है, जिसका मूल तो परब्रह्म में गुप्त है, किन्तु शाखायें सर्वव्याप्त है, यह प्रकृति के तीन गुणों के परिणाक्रम के द्वारा पल्लवित, पुष्पित तथा फलित होता है। प्रत्येक शाखा से नई जड़े नीचे की ओर योनियों के रूप में फैलती जाती है, उनमें से ही कर्मबन्धनरूपी अनुबन्ध योनियों से जुड़े रहते हैं। इस वृक्ष के स्वरूप को समझना अत्यन्त कठिन है, जिसका न आदि और न अन्त दिखाई देता है। किसी के लिए भी इसे जड़ से उखाड़ फेंकना असम्भव है, केवल निरासक्तिरूप अस्त्र से अपने कर्मबन्धन को काटकर उस मार्ग की खोज की जा सकती है, जिस पर चलते हुए इसके प्रभावक्षेत्र से बाहर जाया जा सकता है। यही इस गणितीय सूत्र का उद्देश्य है।

अब मैं यह बताना चाहता हूँ कि गुणों का सांसारिक इच्छाओं से क्या सम्बन्ध है। इच्छा गुणात्मक भावना है जोकि चित्त में गुणों के प्रवाह के परिणामस्वरूप चित्तवृत्ति के रूप में प्रकट होती है। जिस गुण का प्रभुत्व होता है, भावना भी उसी के अनुकूल बनती है। भगवान श्रीकृष्ण ने इसका निर्धारण इस प्रकार किया है कि–

तत्र सत्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम्।
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ।।
रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम्।
तद् निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम्।।
तमस्तु अज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभि: तन्निबध्नाति भारत।।

अर्थात् सतोगुण शुद्ध जल के समान निर्मल है जिसमें परमात्मा का प्रकाश तथा उसका सच्चिदानन्दस्वरूप, ज्ञानत्व तथा आनन्द अंशमात्र में प्रतिबिम्बित होता है। इसलिए बुद्धिज्ञान तथा विषयों में सुखानुभूति के रूप में राग तथा अस्मिता क्लेशविकार के द्वारा जीवात्मा के बन्धन का कारण बनता है। रजोगुण विषय–भोगों में आसक्ति, देहाध्यास के कारण मान–अपमान, राग–द्वेष, सुख–दु:खादि द्वन्दों के द्वारा कर्माशय बनाता है और कर्मफल के बन्धनों में फाँसकर जन्म–मृत्यु के आवागमन का कारण बनता है। रजोगुण से उत्पन्न वासना तथा भोगों की तृष्णा कर्मबन्धन में बाँधकर दु:ख का मुख्य कारण बनती है। तमोगुण देह में प्रमाद, आलस्य तथा निद्रा के भाव उत्पन्न करता है, विशेषकर अज्ञान का आवरण उत्पन्न कर चित्त में मोह–ममता, क्रूरता तथा दम्भ एवं अहंकार के द्वारा जीवभाव को

पुष्ट करता है। इस प्रकार यह तीनों गुण ही अविद्या के आवरण को उत्पन्न कर जीवात्मा तथा परमात्मा में भिन्नता का अनुभव कराकर संसार का निर्माण करते हैं। परमात्मा ने लोकों का निर्माण तथा उनमें प्राप्त होने वाले भोगों तथा सुख–सुविधाओं का विधान भी इन तीन गुणों के अनुसार किया है तथा तो भगवान श्रीकृष्ण घोषणा करते हैं कि–

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था: मध्ये तिष्ठन्ति राजसा:।
जघन्यगुणवृत्तिस्था: अधोगच्छन्ति तामसा:।।

अर्थात् जिनके चित्त में सतोगुणी इच्छाओं की अधिकता रहती है, वह जीवात्मायें उत्तम लोकों में जाती हैं, जिनके चित्त में रजोगुणी वृत्तियों की बहुलता है, वह मध्यलोकों में तथा विशेषकर मनुष्य योनि में जाती हैं। जिनके चित्त में नीच तथा जघन्यवृत्तियाँ रहती हैं तथा तमोगुण का प्रभुत्व है, वह जीवात्मायें नीच योनियों में तथा निम्न लोकों में जाती हैं। रजोगुण के वशीभूत चित्त वाली जीवात्मायें अन्तहीन चिन्ताओं में डूबी रहती हैं। परमात्मा ने स्वयं इसे स्वीकार किया है कि–

चिन्त ापरिमेयां च प्रलयान्तानुपाश्रिता:।
कामापभोगपरमा एतावदिति निश्चिता:।।
आशापाशशतैर्बद्धा: कामक्रोधपरायणा:।
ईहन्ते कामभोगार्थ अन्यायेनार्थसंचयान्।।

अर्थात् जिनकी बुद्धि में यह धारणा बन चुकी है कि जीवन का एकमात्र उद्देश्य संसार में विषय–भोगों को भोगना है और जो काम तथा क्रोध की चित्तवृत्तियों में ही उलझे रहते हैं, विषय–भोगों की हजारों प्रकार की इच्छाओं से जिनका चित्त आच्छादित है तथा उनकी पूर्ति के लिए धनार्जन करने के लिए पापकर्मों में व्यस्त रहते हैं, ऐसी जीवात्मायें मृत्युपर्यन्त चिन्ताओं के अन   न्त सागर में गोते लगाती रहती हैं। इसी प्रकार तमोगुण के वशीभूत चित्त वाली जीवात्माओं की भी इस लोक तथा परलोक में दुर्गति होती है। इसकी पुष्टि भी भगवान श्रीकृष्ण अपने मुख से करते हैं कि–

अनेकचित्तविभ्रान्ता: मोहजालसमावृत्ता:।
प्रसक्ता: कामभोगेषु पतन्ति नरके अशुचौ।।
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिता:।
ममात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयका:।।
तानहं द्विषत: क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपामि अजस्रमशुभान् आसुरीषु एव योनिषु।।
आसुरीं योनिमापन्ना: मूढा: जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्ति अधमां गतिम्।।

अर्थात् तमोगुण से उत्पन्न अज्ञान के कारण जीवात्मायें मोह–ममता के मायाजाल में फँसकर चित्तभ्रान्तियों की शिकार हो जाती हैं। कामभोगों में नित्य निरन्तर आसक्त होने के फलस्वरूप निम्न नरकलोकों में दुःख भोगती हैं, तत्पश्चात् अधम योनियों में जन्म लेती हैं।

●●●

सिद्धयोग मासिक (पत्रिका) का विवरण

फार्म नं. 4

1. प्रकाशन का स्थान	:	श्री सिद्धगुफा, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)
2. प्रकाशन का अवधिक्रम	:	मासिक
3. मुद्रक का नाम	:	दासलाल शर्मा
राष्ट्रीयता		भारतीय
पता		श्री सिद्धगुफा, सवाँई, आगरा (उ.प्र.)
4. प्रकाशक का नाम	:	दासलाल शर्मा,
राष्ट्रीयता		भारतीय
पता		श्री सिद्धगुफा, सवाँई, आगरा (उ.प्र.)
5. सम्पादक का नाम	:	दासलाल शर्मा
6. स्वत्वाधिकारी	:	दासलाल शर्मा

मैं दासलाल शर्मा एतद् द्वारा यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य है।

–दासलाल शर्मा

28 फरवरी 2009 — कृते, सिद्धगुफा प्रकाशन, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा

अन्तमति सोगति

डा. जे. पी. शर्मा (हि. प्र.)

इस संसार का अन्तिम सत्य 'मृत्यु' है। जन्मने वाले की मौत निश्चित है, ऐसा ही विधि का विधान कहा गया है। माता के गर्भ से बच्चा जैसे ही धरा पर आता है, उसके पैदा होने की खुशियाँ मनायी जाती हैं। परंतु खुशी मनाते समय हम भूल जाते हैं कि किसी दिन इसकी मृत्यु भी निश्चित है। दिनों दिन समय गुजरने के साथ हर वर्ष उस बच्चे का जन्मदिन मनाते हैं, परंतु बच्चा जैसे–जैसे बढ़ता जाता है, समझो कि उसकी दिनों दिन आयु क्षीण होती जा रही है।

मनुष्य जीवन की सार्थकता है, केवल ईश्वर स्मरण, क्योंकि प्रभु स्मरण से मानव भव सागर से पार हो जाता है। द्वापर युग में जब राजा परीक्षित को तक्षक ने काट लिया तब राजा ने परम ज्ञानी शुकदेव मुनि से प्रश्न किया? ब्रह्मस्वरूप भगवन्! जो मनुष्य मरणासन्न है, जिसकी मृत्यु निकट है, उसे अपनी मुक्ति के लिए क्या उपाय करना चाहिए? इसका उत्तर देते हुए परम ज्ञानी शुकदेव मुनि ने कहा :–

एतावान् सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया।
जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः।।

अर्थात् मनुष्य जन्म का इतना ही लाभ है कि चाहे जैसे हो– ज्ञान से, भक्ति से या अपने धर्म की निष्ठा से जीवन को ऐसा बना लिया जाय कि मृत्यु के समय भगवान की स्मृति अवश्य बनी रहे।

प्रत्येक प्राणी का एक न एक दिन अन्तिम समय आना ही है। उसकी मृत्यु तथा मृत्यु का समय निश्चित होता है। इसीलिए कहावत है –"**आया है वह जायेगा लम्बे हाथ पसार**"। इसीलिए समय रहते ही जाने की तैयारी हमें कर लेनी चाहिए। मनुष्य जब भी किसी यात्रा पर जाता है, तब जाने की तैयारी वह पहले से ही कर लिया करता है। परंतु प्रायः अन्तकाल की तैयारी बहुत विरले ज्ञानी पुरुष ही किया करते हैं। अन्तसमय का ध्यान आते ही प्राणी घबराने लगता है, उसके चेहरे का रंग फीका पड़ जाता है। हमें श्रीमद्भागवत गीता में भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा बताये गये मार्ग पर चलना चाहिए।

अन्तकाल तजि हैं जब देहा, सुमिरत मोइ कर जतन सनेहा।
ममस्वरूप पावै नर सोई, एहि महँ कछु संसय नहिं होई।।

(गीता 8/5)

अर्थात् जो पुरुष अन्तकाल में मृत्यु के समय मुझको स्मरण करता हुआ शरीर

त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। मृत्यु निश्चित है, उसे टाला नहीं जा सकता, पर उसे मंगलमय तो बनाया जा सकता है-इसी बात को समझाते हुए महामुनि शुकदेव जी, राजा परीक्षित से कहते हैं कि, हे राजन! अपने कल्याण-साधन की ओर से असावधान रहने वाले पुरुषों की वर्षों लम्बी आयु भी अनजाने में बेकार ही बीत जाती है। उससे क्या लाभ? सावधानी से ज्ञानपूर्वक बिताई घड़ी दो घड़ी भी श्रेष्ठ है, क्योंकि उसके द्वारा अपने कल्याण की चेष्टा तो की जा सकती है। राजर्षि खटवाङ्ग का उदाहरण देते हुए वे बताते हैं कि राजर्षि खटवाङ्ग अपनी आयु की समाप्ति का समय जानकर दो घड़ी में ही सब कुछ त्यागकर भगवान के अभयपद को प्राप्त हो गये। मृत्यु को मंगलमय बनाने का उपाय बताते हुए श्री शुकदेव जी महाराज कहते हैं-

अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः।
छिन्द्यादसङ्गशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु ये च तम्।।
गृहात प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः।
शुचौ विविक्त आसीनो विधि वत्कल्पितासेन।।
अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम्।
मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन्।।
नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसा बुद्धिसारथिः।
मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद्धिया।।
तत्रैकावयवं ध्यायेदव्युच्छिन्नेन चेतसा।
मनो निर्विषयं युक्त्वा ततः किन्चन न स्मरेत।।

(श्री मद्भागवत, 2/1/15-19)

अर्थात् मृत्यु का समय आने पर मनुष्य घबराये नहीं। उसे वैराग्य शस्त्र का प्रयोग करते हुए उससे सम्बन्ध रखने वालों के प्रति ममता की लता को दृढ़ इच्छा शक्ति से काट डाले। पूर्ण धैर्य धारण करके घर त्यागकर किसी पवित्रतीर्थ में जाकर स्नान करे तथा एकान्तवास करे। अपने को स्वाध्यायशील बनाते हुए निश्चल मन से प्रभु का निरंतर स्मरण करे। ध्यानाभ्यास करे तथा प्रणव मंत्र "अ, उ, म"-'ॐ' का मन ही मन जप करें। मन का दमन करे तथा क्षणभर भी मंत्रजप भूले नहीं। पूर्णवेग से अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाने का प्रयत्न करे। कर्मवासनाओं से प्रभावित चंचलमन को दृढ़ विचारों द्वारा रोककर ईश्वर के स्वरूप का ध्यान करे। इस प्रकार एक-एक अंग का ध्यान करते-करते विषयवासना से रहित मन को पूर्णरूप से भगवान में समाहित हो जाये, जिससे विषयों का चिन्तन मन कर ही न सके।

अखिल ब्रह्माण्ड नायक योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण महाराज कहते हैं कि प्राणी अपने

वैभव विलास को, घर परिवार को तथा समस्त नाते–रिश्तेदारों को अन्तकाल में याद न करके, केवल मुझ सच्चिदानन्दघन को ही याद करे, मेरा ही स्मरण करे, ध्यान व चिन्तन मेरा ही करे, जिससे तुम मुझ में समा जाओगे अथवा मुझमें तदाकार हो जाओगे। भगवान का बड़ा ही सुन्दर आदेश है, जो हर पल सभी के लिए पालनीय तथा अनुकरणीय है–

सुमिरत जे जे भाव जो, प्राणी त्यागैं देह।
पावैं ते ते भाव सोय अर्जुन नहीं संदेह।।
सब छन मम् सुमिरन करत, अरपन मन मति लाइ।
करु रन करतव मानि तौ, बिनु संसय मोइ पाय।।

(गीता, 8/6–7)

अर्थात् हे कुन्ती पुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकाल में जिस–जिस भाव का स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है, उस–उस भाव को ही प्राप्त होता है, क्योंकि सदा जीवन में उसी भाव का चिन्तन करता है; अतः मृत्यु के समय में भी प्रायः उसी का स्मरण होता है।

इसलिए हे अर्जुन! तू सब समय में निरंतर मेरा ही स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मेरे में अर्पण किये हुए मन–बुद्धि से युक्त हुआ, निःसन्देह मेरे को ही प्राप्त होगा।

अतः मनुष्य को **''सर्वेषु कालेषु''** हर समय ईश्वर स्मरण करते रहना चाहिए, क्योंकि जीवन का क्या भरोसा कब काल मृत्यु बनकर सामने आ जाये? कहते हैं कि मृत्यु के समय जब प्राण निकलना चाहते हैं तब प्राणी को असह्य पीड़ा होती है– हजार बिच्छुओं के काटने से जो दर्द होता है, उसके बराबर पीड़ा मनुष्य प्राणोत्सर्ग के समय अनुभव तथा सहन करता है। उसी छटपटाहट के कारण वह ईश्वर स्मरण प्रायः भूल जाता है तथा माया, मोह, व्याकुलता के भंवर जाल में फँस जाता है। इसलिए प्रभुस्मरण का अभ्यास करना आवश्यक है।

श्री भगवान कृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से मनुष्य को संदेश दिया है कि तुम अपने सांसारिक कार्यों के करते हुए मुझे हर पल हर क्षण स्मरण करते रहो तथा अपने शत्रुओं– काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, ईर्ष्या तथा घृणा से युद्ध करो अर्थात् इन सारे विकारों को जीतो। मन तथा बुद्धि को मुझ में लगाकर मेरे बताये मार्ग पर चलो। अगर ऐसा करोगे तो निःसंदेह मुझको ही प्राप्त होगे। यदि अन्तसमय निकट आ जाये तब प्राणी क्या करे:–

अन्तकाल सोइ जोगनिधाना, भौंहन माहिं करै थित प्राना।
अविचल मन प्रभु सुमिरन करहीं, पावै परम ब्रह्म भव तरहीं।।

(गीता, 8/10)

अर्थात् वह भक्तिभाव वाला प्राणी, अन्तकाल में अपने योग बल से दोनों भौंहों के मध्य में प्राणों को भली प्रकार केंद्रित करे, फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ,

प्राणोत्सर्ग (प्राणत्याग) करे, तो वह उस दिव्य स्वरूप परम पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है।

गीता में भगवान ने कहा है कि समस्त इन्द्रियों को, उनके विषयों से से हटाकर संयम करें। इससे इन्द्रियाँ अपने स्थान में स्थिर रहेंगी तथा मन को हृदय में रोक लें, अर्थात् मन को विषयों की तरफ जाने से रोक लें, इससे मन भी स्थिर हो जायेगा, तत्पश्चात् प्राणों को मस्तक में धारण करें अर्थात् प्राणों को दसवें द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) मन में रोक लें। मन में संकल्प–विकल्प न आने दें तथा प्राणों पर अधिकार कर लें, इसी को धारणा कहा गया है। परन्तु श्री स्वामी तुलसीदास ने श्री रामचरित मानस के किष्किन्धाकाण्ड में कहा है–

कोटि जन्म मुनि जतनु कराहीं। अन्त राम कहि आवत नाहीं।।

यह कथन पूर्णरूपेण सत्य है। अन्त समय तक मनुष्य इतना थक जाता है तथा बेसुध हो जाता है कि उसे ध्यान ही नहीं रहता कि मैं कहाँ हूँ और क्या कर रहा हूँ? वात, पित्त तथा कफ से शिथिल हो जाता है। उचित अवस्था में न कुछ कह पाता है और न कुछ सुन ही पाता है। कोई अंग काम ही नहीं कर पाता। ऐसी अवस्था में वह मन वचन–कर्म से भगवान का स्मरण, ध्यान, चिन्तन भला करे तो कैसे? परम ज्ञानी मुनि शुकदेव जी ने कहा है कि ऐसा कुछ बन जाये कि मृत्यु के समय भगवान के नाम तथा स्वरूप की स्मृति बनी रहे। इस पर भगवान वाराह कहते हैं–

यदि वातादिदोषेण मद्भक्तो मां न संस्मरेत्।

अहं स्मरामि सततं ददामि परमां गतिम्।।

भाव है कि यदि मनुष्य ने जीवन भर में नाम जप का अभ्यास बनाया है, किन्तु यदि कदाचित वह वात–पित्त–कफ के कारण अन्त समय में भगवान का नाम नहीं ले सके तो उस भक्त के बदले में 'मैं' नाम लूँगा, केवल नाम ही नहीं लूगा, मैं उस नाम लेने वाले को परमगति भी दे दूँगा। जरा विचार तो करो, भगवान अपने भक्तों पर कैसी कृपा करते हैं?

उदाहरण स्वरूप एक छोटा बच्चा अपनी माँ से रोटी माँगता है और जब तक वह उसे रोटी दे नहीं देती, तब तक वह माँगता ही रहता है। माँ जब उसे रोटी का ग्रास खिला देती है तब वह बालक मुँह में ग्रास होने के कारण फिर नहीं माँगता। तब फिर माँ को ही पूछना पड़ता है– बेटा और रोटी खाओगे? ठीक इसी तरह जब वात, पित्त, कफ आदि दोषों से ग्रस्त भक्त, सेवक बोल नहीं सकता तथा प्रभु स्मरण नहीं कर सकता, तब भगवान अथवा श्री सद्गुरुदेव जी उस भक्त के रूप में प्रभु स्मरण करते हैं या करा देते हैं। भगवान अपने भक्त की पालना ठीक वैसे ही करते हैं, जैसे माँ अपने बच्चे की करती है। हम अपने प्रभु स्वरूप श्री सद्गुरु देव महाराज के पावन चरणों में कोटि–कोटि बार बलिहारी हों।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

सुमन चाहिए

भूपेन्द 'अंकुश' जलेसर

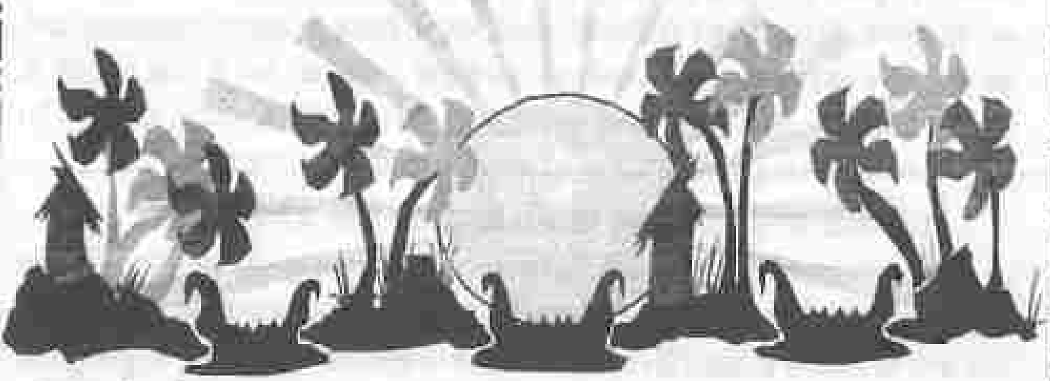

नयी साल में यही कामना
गिरे हुए का हाथ थामना
भारत–सुमन सु–मनवाला हो
कष्टों का ना करे सामना
वीराने हम वीरानों को सुमन चाहिए, सुमन चाहिए
हमें महका महका चमन चाहिए, चमन चाहिए
बाहर से और अन्दर से हम झुलसे हुए, झुलझे हुए
हमें ठंडी ठंडी पवन चाहिए, पवन चाहिए– टेक
उजाड़ों में अपने बसेरे रहे, बसेरे रहे।
बसेरे में छाये अंधेरे रहे; अंधेरे रहे।।
अंधेरे हमें नित डराते रहे–डराते रहे
उजाले को हम छटपटाते रहे
नित रंग बिरंगी किरणों वाले गोदाम से, गोदाम से
उजाले की उजली किरन चाहिए– ।।1।।
न तुम जैसा कोई मिला बागवां; मिला बागवां
न प्रभु के बराबर दिखा महरवां; दिखा महरवां
हमें नीर दो ताप से मर रहे–मर रहे
यही याचना आप से कर रहे
थोड़ा मिले चाहे, चाहे ज्यादा मिले; ज्यादा मिले
हमें प्यार का आचमन चाहिए,
आचमन चाहिए– ।।2।।
प्रभुजी पे कुर्बां हजारों जहाँ, हजारों जहाँ
बहारों का स्वागत हमारे यहाँ, हमारे यहाँ
सिवा आपके चाहिए कुछ नहीं–कुछ नहीं
चले आइये; लाइये कुछ नहीं
तुम आओगे तो आयेगा चला सब यहीं,
सभी कुछ यहीं
हमको तो केवल किशन चाहिए– ।।3।।
हमें भाग्यशाली बना दो प्रभू, बना दो प्रभू
अभी अपना जैसा बना लो प्रभू, बना लो प्रभू
शुभाशीष किरण भरा थाल दो–थाल दो
ऊँचाई छूटा हुआ भाल दो
''अब रोना नहीं प्यारे प्यारे मेरे हुए; मेरे हुए''
यही प्यारा प्यारा कथन चाहिए– ।।4।।

गीता-ज्ञान

मोहन स्वरूप, गोवर्धन

गीता भगवान जगत्गुरु श्रीकृष्ण चन्द्र जी का मंत्र है। इसके सिद्धान्तों को अपने आचरण में लाना चाहिए जिसका हम रोज अध्ययन करते हैं। कोई भी धर्म-कर्म- (कर्तव्य) सम्बन्धी शंका होने पर गीताजी की शरण लेनी चाहिए। अदालत (लौकिक) भी इसी का सहारा लेकर शपथ दिलाती है। अर्थात् गीता का जो सिद्धान्त है वह है - **'वासुदेव: सर्वमिति'** सब कुछ ईश्वर है। महात्मा तुलसीदास जी ने भी लिखा है:- **'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवान'** सृष्टि मात्र ईश्वरमय है-सब चराचर वही है। सब उसी का स्वरूप है। अत: हम सब की क्रिया हर क्रिया भगवान के लिए होनी चाहिए। इसलिए कार्य से पहले परमार्थ अपने सामने होना चाहिए। परमार्थ ही यश है। हर पदार्थ के उपयोग से पहले परमार्थ सेवा भाव आवश्यक है। इसलिए हर क्रिया को भक्ति रूप दें यही मुक्ति का अचूक मार्ग है। जब तक सांसारिक बन्धनों से मुक्त नहीं होंगे, तब तक मुक्ति नहीं मिलती। पूर्णरूप से बन्धन मुक्त होने पर ही मोक्ष मार्ग प्रशस्त होता है। प्रभु के प्रति किया गया हर कर्मभक्ति भाव पूर्ण हो और अच्छे से अच्छा करने की कोशिश करें, जैसे अपना श्रृंगार घण्टों शीशे के सामने करते हो उसी प्रकार अपने प्रभु का, गुरुजी का श्रृंगार करो तो आनन्द आवेगा, लेकिन इसका विपरीत दिखता है, जो नहीं होना चाहिए। चित्रकार व कवि कभी अपनी रचनाओं से संतुष्ट नहीं होता उसे और अच्छा बनाने की कोशिश करता है। इसी को **'योग कर्मसु कौशलम्'** कहा गया है। हर पल का उपयोग सावधानी व एकाग्रता से करना चाहिए, एक दूसरे की भावनाओं को समझकर, देखकर, परस्पर आदर देते हुए। जीव को जीव से जोड़ने का प्रयास करना चाहिए। उत्तम आचरण के अलावा मन के भाव व विचारों को भी जन कल्याण में लगायें। सब के विकास का उद्देश्य रखना चाहिए। अत: भाव व विचारों का प्रभाव भी क्रिया से ज्यादा होता है। अत: कर्मों में जो योग है जिसे **'योग: कर्मसु कौशलम्'** कहा गया है। यह समता है, कुशलता है, चतुरता है। ईर्षा-द्वेष नहीं। चतुरता उसी का नाम है जिस साधना के द्वारा मनुष्य का हो जावे। इसलिए संसार में वही मनुष्य (जीव) चतुर है जो जिस कार्य के लिए आया है उसी कार्य का संपादन करे। क्योंकि मानव शरीर परमात्मा की प्राप्ति के लिए मिला है। जो मनुष्य शरीर को प्राप्त कर परमात्मा को प्राप्त कर लेता है वही चतुर है बाकी सब मूर्ख हैं। अर्थात् निष्काम भाव ही असली चतुराई है। जिससे आत्मा का कल्याण हो जाये वही कुशलता है। प्रथम उच्चकोटि का निष्काम कर्म मानव की (कर्ता) मुक्ति करता है फिर आगे जाकर विशेषता आ जाती है। जैसे:- कोई व्यापारी कल तक खोमचा लगता था, अब उसकी फैक्ट्री चल रही है। तो उसे देखकर लोग आश्चर्य करते हैं। कहते हैं देखो-प्रभु की कृपा है। कितनी लगन थी, समय से खोमचा लगा लेता था। इसलिए समय का सद्उपयोग, नियमानुवर्तिता, स्वचिन्तन, स्वल्प आहार, सतोगुणी होना आवश्यक है।

इसलिए गीता पाठ के साथ-साथ गीताजी की कही बातों का आचरण आवश्यक है। तो प्रभु कृपा होती है तो भगवान गोपनीय बात भी भक्त को बता देते हैं।

आत्मसंयम योग

कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

आत्म संयम साधक जीवन की प्रथम पाठशाला मानी जाती है। वैसे संयम किसी भी व्यक्ति के लिए आवश्यक है। संयम का तात्पर्य नियमानुवर्तिता है। जिस व्यक्ति के जीवन में नियमानुवर्तिता नहीं है, वह योगी होने का सही अधिकारी नहीं हो सकता है। इसीलिए भगवान ने अर्जुन को कहा –''**तस्मात योगी भवार्जुन**'' क्योंकि योगी का दर्जा समस्त साधक समुदायों में श्रेष्ठ है। गीता में कहा गया है कि–

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसङ्कल्पसन्यासी योगारुढस्तदोच्यते।। (6/4)

अर्थात योगी साधक जब न तो इन्द्रियों के भोगों में आसक्त होता है तथा न कर्मों में ही आसक्त होता है, उस काल में सर्वसंकल्पों का त्यागी पुरुष योगारूढ़ कहा जाता है।

योगारूढ़ का तात्पर्य योगसिद्ध होना है। जिससे व्यक्ति आत्मकल्याण का भागी बन जाता है। गीता में भगवान ने योगियों की श्रेणी तथा योग के सिद्ध होने का उपाय तथा योग में मन की स्थिति का निरूपण किया है। जिसका मन सद्‌गुरु की कृपा से संयमित है, उसके हृदय में परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ऐसा योगी मिट्टी और स्वर्ण में कोई अन्तर नहीं समझता है। वस्तुतः वही आत्मसंयमी माना जाता है जिज्ञासुमना अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण से पूछता है–प्रभो योग की सिद्धि कैसे होगी? भगवान ने अर्जुन की जिज्ञासा का उचित अवसर पर उत्पन्न मानकर उसका समाधान किया तथा योग सिद्ध होने के बहुत से कारक बताये। उन सिद्धियों को बाधक तत्वों को भी बताया। यह बाधा साधक के धैर्य की परीक्षा के लिए उपस्थित होती है। वस्तुतः वस्तु की परिपक्वता उसके परीक्षण के बाद होती है। विद्यार्थी को अगली कक्षा में प्रवेश पाने के लिए पिछली कक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक है। उसी प्रकार योगियों की भी स्थिति है। योगी साधक को ज्ञान विज्ञान से पूर्ण होना पड़ता है। ज्ञान का तात्पर्य साधक की योग और उसके विभिन्न अंगों की पढ़ाई है। विज्ञान का तात्पर्य योग के आन्तरिक तत्व ध्यान तथा तत्वों का साक्षात्कार करना अर्थात् अन्तर्मुखता को प्राप्त करना। हमारे सिद्ध गुफा सवाई के सभी साधकों को आत्मसाक्षात्कार प्रभु कृपा से अनायास प्राप्त है।

मध्ययुग के संतों पर भी प्रभु की कृपा थी। इसीलिए उन्होंने चुनौती देते हुए कहा कि– ''**तू कहता है कागद लेखी मैं कहता हूँ आँखन देखी।**'' अर्थात् हे संतों, महन्तो, ज्ञानियों तथा साधक समुदाय आप सब वेदों शास्त्रों के आधार पर सब कुछ कहते हैं। कभी संशय होने पर भटकाव की स्थिति में हो जाते हैं, लेकिन कबीर उस तत्व का साक्षात्कार करके तब बोलता है।

यह योग सिद्धि का उच्च लक्षण है। सामान्य साधक के लिए योग सिद्धि के उपायों में भगवान ने कहा–

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।।
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उप विश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्म विशुद्धये।।
समं काय शिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वंदिशश्चानवलोकयन्।।

अर्जुन इस प्रकार जो साधक साधनरत रहता है, ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन करता है, ऐसे को योगसिद्ध होता है। व्यक्ति के जीवन में ब्रह्मचर्य आवश्यक है। इससे शारीरिक सौष्ठव में निखार तथा वाणी में ओज आदि तमाम गुण स्वाभाविक रूप से आ जाता है। ऐसे में आत्मसंयम भी स्वाभाविक रूप से होता रहता है। साधक अपने साधन की डायरी को नियमित भरने के बाद जब विश्लेषण करता है तब, उसको उसके साधन के संयम का पूर्ण ज्ञान होता है। इसलिए साधक को सतर्क और सावधान रहने के लिए ऐसी डायरी उपयोगी होती है।

स्वाधीन मन वाला साधक निश्चय ही परमात्म चिंतन के आधार पर शान्ति की पराकाष्ठा को प्राप्त कर ही लेता है। अर्जुन युद्ध के मैदान में विभिन्न परिस्थितियों से घिरा अपने ही लोगों से युद्ध करना ऐसे में आत्मसंयम से ही कार्य की सिद्धि सम्भव है। भगवान ने अर्जुन को आत्मसंयम के समस्त साधन विस्तृत रूप से बताये। हम साधक के लिए भी भगवान के ये योगोपदेश सुग्राह्य है।

योग सिद्धि के लिए जीवन के प्रत्येक पहलू पर विचार करने के लिए भगवान ने बताया है। हमारे सद्गुरुदेव ने भी साधकों को साधन की रहस्यमय बातों को उपदिष्ट किया। भगवान ने कहा– अर्जुन योग सिद्धि में आहार–विहार का भी प्रमुख स्थान है। क्योंकि शरीर का पोषण अन्न से होता है। यह योग न तो अधिक से तथा न तो कम करने से सिद्ध होगा। इसके लिए उपदेशित करते हुए भगवान ने कहा है–

युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वपनावबोधस्य योगी भवति दुःखहा।। 6/17

अर्थात् हे अर्जुन! आत्मसंयम को सिद्ध करने वाले साधक को यथा योग्य आहार और विहार करने वाले का तथा कर्मों में यथा योग्य चेष्टा करने वाले और यथा योग्य शमन करने वाले तथा जगाने वाले का सिद्ध होता है।

योग सिद्धि के लिए भगवान ने और भी चेष्टाओं को बताया है। यह घबराये हुए चित्त से भी सम्भव नहीं है। इसको प्राप्त करने के लिए अभ्यास और धैर्य की भी आवश्यकता है।

पातंजलि योग मे भी सूत्र है–

स तु दीर्घ काल नैरन्तर्य सत्कारा सेवित दृढ़भूमि।

इसके अतिरिक्त योगी को सर्वत्र समदर्शन वाला होना चाहिए। क्योंकि इस दृश्य जगत मे जो भी जड़चेतन प्राणी है। सबमे ईश्वर का निवास होता है। समाज में आज भी बहुत सी भ्रान्तियाँ व्याप्त हैं। जबकि हम अध्यात्म के धरातल के आधार पर तकनीकी रूप से आगे है। हम यह भी जानते है कि ईश्वर का अंश हर चेतन सत्ता मे है। ऐसे मे व्यक्ति को हर समय ईश्वर का ही दर्शन हो रहा है। किसी चेतना का स्पर्श भी ईश्वर का ही स्पर्श है, इसलिए व्यक्ति कभी भी ईश्वर से अलग हो नहीं सकता है।

अब प्रश्न यह है कि क्या प्रत्येक साधक ऐसा अनुभव करता है? क्या उसका मन संयमित है? इसीलिए अर्जुन ने भगवान से पूछा–

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।। (6/34)

उत्तर मे भगवान ने अर्जुन से कहा– अर्जुन! यह मन यदि बिना लगाम वाला हो जाये तब तो कुछ भी नहीं हो सकता है। व्यक्ति सामान्यावस्था से भी पतित हो सकता है। लेकिन आत्मा को अभ्यास और वैराग्य से वश में किया जा सकता है। अर्थात् अभ्यास के द्वारा अपने मन पर आधिपत्य जमा सकता है। अन्यथा योग की प्राप्ति संभव नहीं है। अर्जुन को पुनः संशय हुआ कि जो अभ्यास और वैराग्य को धारण नहीं करते उनकी क्या गति हो सकती है? अथवा ऐसे लोग जो योग करते हुए कदाचित संस्कार वशात् भ्रष्ट हो जाते है उनकी क्या गति होती है?

योगेश्वर भगवान कृष्ण ने इसका समाधान करते हुए कहा– अर्जुन! जो पुरुष योग साधन करते हुए कदाचित संस्कार वश भ्रष्ट होते हैं, उनकी दुर्गति नहीं होती है। वह किसी पुण्यवान् भागवत के घर मे जन्म लेता है अथवा उत्तम लोक को प्राप्त करता है अथवा ऐसा वैराग्यवान साधक योगियों के वंश मे जन्म ग्रहण करता है। किंतु ऐसे साधकों की संख्या कम हो सकती है। क्योंकि ऐसा जन्म दुर्लभ होता है। ऐसा साधक जो योगियों के कुल में जन्म ग्रहण करता है निश्चय ही संसार को तारने की क्षमता वाला होता है। ऐसा व्यक्ति योग का पूर्ण जिज्ञासु वृत्ति वाला निश्चय ही वेदो मे कहे गये सकाम कर्मों के फल का भी उल्लंघन कर जाता है। कबीर आदि संत ऐसे ही संसार को तारने वाले थे। ऐसे साधक जो अभ्यास और वैराग्य की ओर उन्मुख नहीं होते वे वस्तुतः अधोगति को ही प्राप्त करते है। इसलिए भगवान ने अर्जुन को हर प्रकार से आत्मसंयमित चित्त से कार्य करते हुए योग के आश्रय को ही श्रेष्ठ बताया है। क्योंकि बिना योग के देवता भी मोक्ष को नहीं प्राप्त होते हैं।

ज्ञान निष्ठो विरक्तो वा धर्मज्ञो वा गुणान्विता।
बिना योगेन देवे अपि मोक्ष न लेभे।।

ऐसी अमूल्य निधि वाला योग ही धारण करने के लिए भगवान ने कहा। उसका कारण श्री भगवान ने बताया कि योगी इस संसार में सबसे श्रेष्ठ है। इसलिए अर्जुन तू भी योगी बन–

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिक।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्मात्योगी भवार्जुन।।
योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजतेयोगो स मे युक्तयमोमतः।।

अर्थात् योगी तपस्वियों में श्रेष्ठ है। शास्त्रज्ञों से भी श्रेष्ठ है तथा सकाम कर्म करने वालों में भी योगी श्रेष्ठ है। इसलिए अर्जुन तू भी योगी बन। आगे पुनः कहा कि जो मेरे में अपने मन को लगाये रखते हैं अर्थात् निरन्तर मेरा ही चिन्तन करता है। वह मुझे प्राप्त कर लेता है। सद्गुरुदेव भगवान के भी उपदेश थे कि जो लोग गुरुदेव के बताये हुए मंत्र का अर्थ भावना के साथ जप करते हैं, वे उस मंत्र देवता का, मंत्र सिद्ध करने वाले सिद्ध साधक का तथा सद्गुरुदेव का शक्ति प्राप्त करते हैं। ऐसे साधक निश्चय ही पुण्यवान होते हैं। इसलिए साधक आत्मसंयम के माध्यम से परमतत्व के भागी बन सकते हैं। सिद्ध गुफा सवाई के सभी साधक समुदाय को सद्गुरु कृपा रूपी साधन स्वभावतः प्राप्त है। निश्चय ही वे बड़भागी बन रहे हैं।

●●●

शोक संवेदना

1. बड़े ही दुःख से सूचित करना पड़ रहा है कि जयपुर निवासी श्री रमेश चन्द दीक्षित का 28 दिसम्बर को देहावसान हो गया। वे गुरुदेव के बहुत पुराने व लाडले बच्चे थे। श्री सिद्धगुफा सवाई आश्रम में बहुत सारे निर्माण कार्य उनके निर्देशन में चल रहे थे। उनकी सेवाओं को भुलाया नहीं जा सकता। यह अपूर्णनीय क्षति आश्रम को हुई है। इनका दाह संस्कार उनके बेटे मनीष के द्वारा किया गया। वे 74 वर्ष के थे। श्री प्रभु जी उनको अपना अभय चरण दें, यही कामना है।

2. करोल बाग निवासी मा. हर प्रसाद जी के पुत्र श्री कृष्ण दत्त का 29 दिसम्बर को देहावसान हो गया। वे श्री गुरुदेव से दीक्षित बच्चे थे। उनका परिवार पुराने समय से जुड़े गुरुदेव के प्रिय भक्तों में से एक है। प्रभु इनको अपने चरण शरण दें।

3. अम्बाला निवासी श्री पं. शंकर दास शर्मा का 10 जनवरी को निधन हो गया। वे 87 वर्ष के थे एवं गुरुदेव से दीक्षित थे। उनके पुत्र श्री सुरेश शर्मा अम्बाला कैंट में रहते हैं।

श्री प्रभु जी से प्रार्थना है कि इन दुःखी परिवारों को असह्य दुःख को सहन करने की शक्ति दें।

—सम्पादक

बड़े गुरु भाईयों का जाना....

अवनीश कुमार भटनागर, सहारनपुर

सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी योग के क्षेत्र में सिद्धयोग प्रभा से अलंकृत अति विशिष्ट एवं अद्वितीय विभूति हैं, उन्होंने तपोतेज एवं योग की समस्त योग्यताओं को अपने में समाहित करके भी बाह्य रूप से अति साधारण आकृति बनाये रखी, जिससे लोगों में सदा भ्रम ही बना रहा कि क्या ये वास्तव में कुर्तुमअकुर्तुमशक्ति वाले परब्रह्म स्वरूप सर्वशक्ति सम्पन्न ईश्वर हैं जो साकार रूप में हमारे समक्ष प्रादुर्भूत हैं। जो बाल सुलभ मनोहरता, चंचलता, निश्छलता से ओतप्रोत निरंतर हमारे कल्याण के लिए क्रियाशील हैं। वह भक्तों के कल्याण के लिए किसी भी समय कोई भी दैवी लीला कर डालते हैं जो उनके लिए भृकुटि विलास का खेल मात्र है। परंतु लोगों के लिए वो ही विलक्षण चमत्कारिक चरित्र बन जाते हैं। जीवों के जो कार्य क हीं से भी नहीं बन पाते थे वह सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी से दीक्षा लेने के पश्चात् ऐसे बन गये और उसमें कोई परिश्रम विशेष भी नहीं करना पड़ा। यह सब इसलिए होता था कि सद्गुरु रूप में प्रकट ब्रह्म हमारे सामने विद्यमान था उनके सत्य संकल्प से तत्काल भाग्य पलट जाता था। वह भाग्य बनाने वाले हैं। आज भी उनके शरणागत जीव उनके शक्ति सम्पन्न सिद्ध संकल्प से निरंतर लाभान्वित होकर इहलौकिक एवं पारलौकिक उन्नति प्राप्त कर रहे हैं।

उनके लाखों दिव्य लीला चरित्र भक्तों के मध्य में विद्यमान हैं। इनके साक्ष्य में दो तरह के प्राणी समाहित रहे– एक तो जिनके साथ यह लीला चरित्र घटे थे, दूसरे वह जिनकी दृष्टि के सामने घटे थे यह दोनों ही प्रकार के व्यक्ति हमारे गुरुभाई समाज में एक चलती, फिरती, बोलती पुस्तकें (साहित्य) हैं। संयोग वश इनको जहाँ कहीं भी कुरेदा जाये तो बहुत बड़ा–बड़ा खजाना सद्गुरु लीला चरित्रों का निकल पड़ता है और उन दिव्य लीला चरित्रों को सुनकर मन दिव्यानंद से सराबोर हो जाता है और बलात आभास होने लगता है कि हमारे सद्गुरुदेव साधारण वेश में हैं अवश्य, पर हैं अति विलक्षण कुर्तुमअकुर्तुम शक्ति वाले वह चाहें जो और चाहे जब कर सकने में समर्थ महाप्रभु हैं। उन्हें किसी से पूछने माँगने या आज्ञा लेने की भी जरूरत नहीं। सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के दिव्य लीला चरित्रों के साक्षी अनेक गुरुभाई बहिन रहे हैं। इनमें से कुछ तो श्री सद्गुरुदेव जी के नित्य वन्दनीय धाम में प्रवेश पा चुके हैं। जैसे दादा केशव देव जी, बहन वेदवती जी, जुगमन्दर दास जी, आत्माप्रसाद जी, ब्र. रामश्रय जी, महात्मा ज्ञानी रामजी, भुवनेन्द्र झा जी आदि–आदि और दिव्य लीलाओं के साक्षी गुरु भाई बहिन जो श्री सद्गुरु सेवा में अभी भूमि पर विद्यमान हैं और गुरु कृपा से स्वस्थ एवं प्रसन्न हैं उनकी यह जिम्मेदारी है कि वह अब अपने गुरुदेव का कार्य

भी करें, उनको जो गुरु लीला चरित्र स्मरण है उनको वह लिपिबद्ध करें और सिद्धयोग मासिक पत्रिका में प्रकाशन हेतु ''आचार्य श्री दासलाल जी महाराज'' के कर कमलों में भेज दें, वे समयानुसार उसे पत्रिका में स्थान दे देंगे। यदि किसी भाई में लिपिबद्ध करने की सामर्थ्य नहीं है तो वह अन्य जिम्मेदार गुरुभाईयों को बोलकर लिपिबद्ध करायें इसका सबसे अच्छा उदाहरण बनारस के हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री केशवदेव जी है उनको यह दिव्य लीला चरित्र लिख भेजें जिनको वह साहित्यक शब्दों में लिखकर सिद्धयोग पत्रिका में प्रकाशित करा देंगें, जिससे श्रद्धालुओं की श्रद्धा संवर्धन होगी और जो समर्थ गुरुभाई हैं वह अपने प्रयास से भी सद्गुरु देव जी के लीला चरित्रों को छपवाकर बाँट सकते हैं। इसका बहुत अच्छा अवसर आगामी श्री विजयादशमी सन् 2009 को महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के प्रादुर्भाव का शताब्दी वर्ष का सुनहरा अवसर है। इस पावन पवित्र अवसर पर तो सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी की कृपा से निहाल हुआ उनका प्रत्येक शिष्य कुछ न कुछ अवश्य ही करे, समारोह आयोजित करे, संस्मरण लिखे, श्री गुरुदेव से प्राप्त योग विद्या का प्रचार-प्रसार करे, उनके द्वारा किये विलक्षण कार्यों को जगत के सामने लाये और बताने का प्रयास करे कि ऐसे सर्वशक्तिमान हैं हमारे गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी और जिस भी प्रकार से वह अपने गुरुदेव का नाम जगत में रोशन कर सके, गुरु देव का नाम चमकाना प्रत्येक शिष्य का धर्म है और यदि कुछ भी करने की सामर्थ्य उसमें नहीं हो तो भी सद्गुरुदेव जी के प्रति पवित्र भावों को लेकर समारोह में उनके धाम में उपस्थित तो अवश्य ही हो जाये।

सद्गुरुदेव जी के चरणों में समर्पित रहने वाले हमारे अनेक वरिष्ठ गुरुभाई जो अनेक-अनेक दिव्य सद्गुरु लीलाओं के साक्षी थे आयुपूर्ण हो जाने के कारण से हमारे बीच नहीं रहे, उनका इस संसार से चले जाना मानो गुरु लीला चरित्रों की चलती, फिरती, बोलती पुस्तकों का बन्द हो जाना ही है।

●●●

> ***दूसरों के लिये कुछ करना पड़े तो तकलीफ-सी होती है, परंतु अपनों के लिये करना हो तो आनन्द होता है। यह सब मन का खेल है। मन बड़ा कपटी है। 'मेरा और तेरा' का खेल इस मन ने ही रचा है। सचमुच मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है।***

सफल शिल्पी! मेरा प्रणाम, 'तुझे'

राजेश कुमार सिंह, बलिया

कुछ तो गुल खिलाकर, शमां बहार अपनी दिखा गये;
धिक्कार है तो उनपे है, जो बिन खिले मुरझा गये।

इक समग्र जीवन जीने वाले जयपुर निवासी, प्रभु अनंत श्री चन्द्रमोहन जी के प्यारे स्व. रमेश चन्द दीक्षित जिनका भौतिक शरीर 29 दिसम्बर 2008 को पूरा हो गया अर्थात् उनकी दिव्य आत्मा सद्गुरु सत्ता परमात्मा में विलीन हो गई, कभी हारना नहीं जानते थे। दीक्षित जी के दक्षता के विषय में जानने के लिए ये उदाहरण ही पर्याप्त है–

इटावा योग आश्रम में मैं श्रद्धेय ब्रह्मचारी श्री शंकर चटर्जी जो कोलकाता के रहने वाले हैं तथा प्रभुजी के अनन्य भक्तों में से एक हैं, से रमेश चन्द दीक्षित जी के विषय में चर्चा कर रहा था; कि सवांई योग आश्रम का कितना अच्छा नक्शा तैयार किया है? एशिया का सबसे सुन्दर चलचित्र घर उन्ही की कल्पना की देन है। श्री चटर्जी जी बताये कि वो वास्तव में वैरा है। महाराज जी की असीम कृपा उन पर बरस रही है; एक बार दुर्गापुर में एक कारखाना जो घाटे में जा रहा था, का मालिक पूर्णतया निराश हो चुका था, दीक्षित जी के पास आया तथा कारखाने के विषय मे चर्चा की। दीक्षित जी कारखाने के मालिक के साथ उसे देखने गये; देखकर बोले घबराओ नही प्रभुजी की कृपा से ये ठीक हो जायेगा। चटर्जी स्वय एक अभियंता है, दीक्षित जी को परामर्श दिये कि इसको हाथ में लेना ठीक नहीं क्योंकि ये सुधरने वाला नहीं है; दक्षता के मिसाल दीक्षित जी बोले – 'लड़खड़ाते को दौड़ाया नही तो फिर कैसा अभियंता।' और हाँ वो उस कारखाने को सुधारने में शतप्रतिशत् सफल हो गये।

जब व्यक्ति जिम्मेदारी को स्वीकारता है तो उन्नति का मार्ग स्वतः खुलने लगता है जवाबदेही को स्वीकार करने से समझदारी और परिपक्वता स्पष्ट दिखाई पड़ने लगती है। दीक्षित जी को मैंने कभी निराश नहीं देखा। कर्म, ज्ञान और भक्ति उनके अन्दर कूट–कूटकर भरी हुई थी। मेरी नजर में वे एक निष्काम कर्म योगी थे। जीवन के पूरे ऊँचाई पर खड़े थे। फिर भी कभी चिल्लाकर कहते मैंने उनको नहीं सुना कि मेरा कद बहुत ऊँचा है। वे प्रत्येक कर्म को श्री प्रभु जी सद्गुरुदेव महाराज जी को समर्पित करके करते थे। किसी भी कार्य को वो जब हाथ में लेते थे उसको पूरी तन्मयता से पूरा करने में लग जाते थे। उनके कार्यों की प्रशंसा करने पर कहते थे, 'सब गुरुजी कर रहे है, मैं कुछ नहीं।' जब दिव्य अनुभूतियाँ होती है तो बहुत कम लोग है जो उसे बताते है, लेकिन दीक्षित जी के कार्य करने के तरीके हमें बताते थे कि प्रभुजी हर वक्त उनके साथ मे है। मेरे समझ से बिना परा शक्ति की कृपा से कोई भी व्यक्ति उस ऊँचाई पर नहीं जा सकता जहाँ पर दीक्षित जी थे। वो अनूठे व्यक्ति थे, वो हर वक्त जीत के लिए खुद को तैयार रखते थे। वो डींगे नहीं हाँकते थे, बल्कि जीत की पूर्णतः तैयारी करते थे तथा प्रमाण देकर यकीन करवाते थे, शब्दों से

नहीं।

स्पष्टवादी दीक्षित जी ने एक बार मुझसे कहा कि जब मैं आश्रम में झाडू लगाकर कूड़ा फेंक रहा था कि यहाँ के लिए यह सबसे अच्छा काम है, मगर तुम अपने जीविकोपार्जन के लिए कुछ नहीं कर रहे हो इसलिए कहना पड़ रहा है कि केवल एक अच्छाई तुम्हारे अन्दर है बाकी कमियाँ ही कमियाँ हैं। उस बात को मैंने बुरा नहीं माना, लगा कि श्री प्रभुजी के माध्यम से मुझ अनाड़ी को सत्य का दर्शन करवा रहे हैं। वास्तव में देखा जाए तो मैं एक निकृष्ट आदमी हूँ, मुझे जीवन जीने की कला नहीं मालूम है। असल में सफल व्यक्ति अपने तथा दूसरों के साथ भी ईमानदार होता है, उसकी कर्त्तव्यपरायणता परिस्थितियों पर निर्भर नहीं करती। वे प्रतिबद्धता और सृजनात्मकता के पहचान होते हैं, पर्याय होते हैं। मैंने दीक्षित जी के मुख से किसी की भी आलोचना करते नहीं सुना। शायद उनका मस्तिष्क इस तरह का बना ही था कि हर चीज उनको सकारात्मक और खूबसूरत लगती थी। आश्रम में रहने वाले भले आरती में न आते हों मगर दीक्षित जी कड़ाके की सर्दी के बावजूद भी सुबह मंगला आरती में आना नहीं चूकते थे। वो हर वक्त प्रभु चिन्तन या आश्रम के निर्माण कार्य में लगे रहते थे। वे कभी भी मन को चोट देने वाली बातें नहीं बोलते थे, वे सामान्य बातों को भी बड़े कलात्मक ढंग से समझाते थे। दीक्षित जी आज में जीने वाले योगी थे, जो ईर्ष्या और भय से सदा दूर रहते थे। वे कहा करते थे– आप गलत का सहारा लेकर नया संस्कार मत बनाओ। वो हरेक कार्य को बखूबी अंजाम देते थे, उत्साह हर वक्त उनके साथ रहता था। वो सच्चाई, ईमानदारी और विनम्रता के साथ एक शिक्षक की तरह कार्य करते थे। उनका जीवन प्रेरणास्त्रोत था।

स्व. दीक्षित जी महाप्रभु जी की गोद में सदा के लिए चले गये, हमें अब नजर नहीं आयेंगे, उनके बनाये नक्शे मौजूद हैं मगर वो नहीं। उनके रहते हमने कुछ भी सीखने की कोशिश नहीं की। अब उनके इस जहां से जाने के बाद मेरी आँखें खुलीं। इससे ज्यादा मेरे लिए बदनसीबी और क्या हो सकती है, उनके जाने से मेरा व्यक्तिगत बड़ा नुकसान हो गया है, उनसे जो मुझे मानसिक खुराक मिलती थी, बन्द हो गयी। इस सिद्धयोग परम्परा से जुड़े दो व्यक्ति प्रथम स्व. आत्माप्रसाद सिंह वकील साहब बनारस वाले तथा दूसरा स्व. रमेश चन्द दीक्षित जी अभियंता जयपुर वाले, को इस जहां से जाने से हमें हार्दिक कष्ट हुआ। एक व्यवहारिकता में धनी थे तो दूसरा शिल्प कार्य में। आप मेरा अभिवादन जहाँ भी हो, जिस रूप में भी हों स्वीकार करें। निःसंदेह आप प्रभुजी के साथ होंगे। कोटि नमन! **जय गुरुदेव**

गुफा की दीपक या, प्रभु का दुआ से तुम,
प्रभु का तोहफा या, खुद प्रभु हो तुम,
हे महामानव! आप ही करो फैसला,
एक सफल शिल्पी या, आश्रम की आत्मा हो तुम।

●●●

(देववाण्याम्) **संकल्प एषस्तु नवीन वर्षे (2009)**

वेत्तु क्षम: कोऽपि न कालगर्भे, प्रच्छन्नतामेति विपत् सुखं वा।
प्रयत्नशीलोऽस्ति सदा सुधीजन:, पराङ्मुखो नोज्झति कर्तृता निजाम्।।1।।
आतङ्कदंशैर्व्यथितोऽपि देश:, स्वदेशभक्तान् प्रति गर्वितोऽयम्।
वर्षागमोनास्ति सुखाय हो न:, तथापि भावैरुद्भावितोऽहम्।।2।।
स्वस्थै: शरीरै दृढमानसैश्च, धनैश्च कनकैर्विविधैरुपायै:।
वयं भारतीया: परिशापयाम:, देशाय प्राणानपुत्सर्जयाम:।।3।।
अयं भारतो नो वयं भारतीया:, वयं भारतेन तथा भारताय।
चेदवक्रदृष्टि रिपव: क्षिपेयु:, कुर्युर्वयं तन्मूलत एव मारणम्।।4।।
अतो नवे वर्ष समागमेऽहम्, याचे भवदभ्यो जगदीश्वरादिदम्।
पुष्टो भवान् स्याद् वपुषा च मनसा, धनेन धान्येन स्वजनैश्च सर्वथा।।5।।

(Its English Version) **The New Year's New Assertion**

None is aware of the calamity or comity,
remaining hidden in the womb of Time.
Even exert the wisemen,
Never avert from the acts sublime.(1)
Country though bitten by the stings of terror
Feels proud of the loyal countrymen.
The New years advent may not bestow upon the healthy happiness
Yet I enjoin myself with my views comming in. (2).
With stout bodies and firm minds,
Wealth with gold and with all other devices,
We, the Indians,wish to proclaim,
We are prepared for all sacrifices.(3)
Ours is India, Indians are we,
From Indians we are, and are for India.
With inimical eyes if enemies stare us,
We perish them from the root tria. (4)
I, therefore, at the advent of this New year,
Beseach from you from the Lord of the universe.
May you be strong bodily, with your mind,
Monetarily with family members.(5)

(हिन्दी पद्यान्तर) **नये वर्ष में यह नई चेतना हो (2009)**

कालगर्भ में अन्तर्हित क्या, सुख या दु:ख यह कौन जानता।
बुद्धिमान् जन सदा यत्नरत, कर्मलीन जन नहीं मानता।।1।।
आतङ्कदंश से देश दु:खित है, देशभक्तगण से गर्वित भी।
नववर्ष समागम नहीं सुखावह, तदपि भाव उद्भावित है ही।।2।।
स्वस्थ शरीरों दृढ जनमन से, धन–स्वर्णादि उपाय अन्य से।
भारतीय हम संकल्पित हैं, भारत रक्षा करें प्राण से।।3।।
भारत अपना भारतीय हम, हम भारत से भारत हित हम।
टेढ़ी नजर शत्रु की यदि हो, मिल मूल–प्रहार करें सब हम।।4।।
नव वर्षागम के अवसर पर, जगदीश्वर से यही चाहता।
वपु से पुष्ट बनें मन से भी, धन–परिजन से यही माँगता।।5।।

–डी.पी. शर्मा, लखनऊ

।। श्री रामलाल प्रभवे नमः ।।

श्री महाप्रभु रामलाल जी महाराज
का
पावन जयन्ती महोत्सव

अपने आश्रम श्री सिद्धगुफा सवांई (आगरा) में योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के 121 वें पावन प्राकट्य दिवस के उपलक्ष्य में राम नवमी महोत्सव चैत्र शुक्ला सप्तमी, अष्टमी, नवमी तद्नुसार बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार, दिनांक. 1, 2 व 3 अप्रैल 2009 को धूमधाम से मनाया जा रहा है। चैत्र नवरात्रारम्भ दि. 27 मार्च से प्रारम्भ हैं, इसी दिन से गुफा में नवरात्र की अखण्ड ज्योति भी जलाई जायेगी।

सभी गुरुभाई बहिनों से नम्र निवेदन है कि वे इस भव्य आयोजन में सपरिवार इष्ट मित्रों सहित सम्मिलित होकर श्री महाप्रभु जी का आशीर्वाद एवं सत्संग का लाभ प्राप्त करें। परम पावन सिद्धभूमि का दर्शन लाभ करें व अपने को धन्य बनावें।

जय गुरुदेव जी की!

निवेदक

समस्त आश्रम वासी एवं श्रद्धालु भक्त मण्डल

श्री गुफा, सवांई (एत्मादपुर)

आगरा–283202

इंडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर [illegible] (स्टाम्प लिए) का विज्ञापन

2. [illegible]

3. [illegible] रु. 1000 प्रति [illegible] रु. 500.00 प्रति [illegible]

4. [illegible]

5. [illegible]

6. [illegible]

7. [illegible] 25 पैसे मात्र।

मैलाई (... [illegible] ...) जिला (उ.प्र.)

[illegible] प्रशा केन्द्र

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मु[illegible]
राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री [illegible]
प्रकाशित। आर.एन.आई. नः UPHIN/2004/14568